रवीन्द्र-साहित्य

पाँचवाँ भाग

सत्यकी खोजमें
महात्मा गान्धी
जन्म-दिन
पापके खिलाफ
महात्माका पुण्यव्रत
व्रत-उद्यापन

संस्कार
जय-पराजय
पोस्ट-मास्टर
रामलालकी बेवकूफी
समाप्ति
फरक
सजा
कहानियाँ

धन्यकुमार जैन

प्रकाशक : धन्यकुमार जैन, हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७

मूल्य सवा दो रुपया

सूची

मुद्रक : हजारीलाल शर्मा, हिन्द प्रेस ऐण्ड पब्लिकेशन
३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-६

रवीन्द्र-साहित्य

भाग ५

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७



सत्यकी खोजमें :

ऊपर पहाड़की चोटीपर बैठा है भक्त, तुषार-शुभ्र नीरवतामें;
आकाशमें सदाजाग्रत दृष्टि उसकी ढूंढ़ रही है प्रकाशका संकेत।
निशीथ रातका घोर अन्धकार है सामने, निशाचर पक्षी चीख रहे हैं;
वह कहता है, 'डरो मत, भाई, मानवको महान समझो।'
कोई नहीं सुनता। सब कहते हैं, पशुशक्ति ही आद्याशक्ति है, पशु ही शाश्वत है।
कहते हैं, साधुता है कहाँ? आत्म-प्रवञ्चक है तुम्हारी यह साधुता!
पर, चोट खानेपर विलाप करते हैं, कहते हैं, 'भाई, तुम कहाँ हो?'
जवाबमें सुनते हैं, 'मैं तुम्हारे ही पास हूं भाई!'
अँधेरेमें सुझाई नहीं देता कुछ; बहस करते हैं, भयार्तकी मायासृष्टि है यह;
अपनेको तसल्ली देनेकी विडम्बना।
कहते हैं, आदमी हमेशा संघर्ष करता रहेगा; लड़ता ही रहेगा;
मरीचिकाके हकके लिए,
हिंसा-कंटकित अन्तहीन मरुभूमिपर।

पौ फटी। शुकतारा चमक उठा पूर्व-दिगन्तमें।
पृथिवीकी छातीमेंसे आरामकी एक लम्बी साँस निकली।
भक्तने कहा, 'समय आ गया।'
काहेका समय?
'यात्राका : चलनेका।'
सब सोचने लगे बैठे-बैठे।
अर्थ नहीं समझ सके : अपने-अपने मन माफिक अर्थ लगा लिया सबने।
प्रभातका स्पर्श मिट्टीमें भिद गया गहराई तक;
विश्व सत्ताकी जड़ोंमें काँप उठा जीवनका चांचल्य।
मालूम नहीं कहाँसे एक अतिसूक्ष्म स्वर
सबोंके कानोंमें बोल उठा, 'चलो सार्थकताके तीर्थको।'
प्रभातके प्रथम प्रकाशने भक्तके भालपर सुनहला चन्दन लेप दिया;
सभी बोल उठे, 'भाई, हम तुम्हारी बन्दना करते हैं।'

दयाहीन दुर्गम मार्ग है ऊबड़-खाबड़ कंटकाकीर्ण ।
भक्त चला है; उसके पीछे हैं बलिष्ठ और कमजोर,
जवान और बूढ़े; वे भी हैं जो दुनियापर हुकूमत करते हैं
और वे भी हैं जो अध-पेट खानेके बदले जमीन जोतते हैं ।
कोई थक गया है, किसीके पाँवोंमें छाले पड़ गये हैं;
किसीके मनमें क्रोध है तो किसीके मनमें सन्देह ।
वे हर कदमको गिनते हैं और पूछते हैं, 'कितनी दूर है और ?'
जवाबमें भक्त सिर्फ भजन गाता है ।
सुनकर सबकी भौंहें तन जाती हैं; पर लौटते नहीं बनता ।
चलते हुए जन-पिण्डकी तेज रफ्तार और कम-जाहिर आशाकी मार
उन्हें ढकेले लिये जा रही है ।
नींद घटी, आराम घटा; डर आया, अशंका होने लगी कि
कहीं पीछे न रह जायँ, कहीं वञ्चित न होना पड़े ।
आपसमें व्यग्रताकी होड़-सी चलने लगी पहले पहुंचनेको ।
दिनपर दिन बीतते ही गये । दिगन्तके बाद दिगन्त आता ही रहा,
अज्ञातका आमन्त्रण अदृश्य संकेतका इशारा करने लगा ।
सबका चेहरा क्रमशः कठोर हो उठा, असन्तोषका भाव दिखाई दिया,
अविश्वास बढ़ने लगा, विरोध उग्रसे उग्रतर होने लगा ।

रात आई । यात्री वटवृक्षके नीचे आसन बिछाके बैठ गये ।
जोरका एक झोंका आया, दिआ बुझ गया, घना अँधेरा छा गया;
नींद, हाँ, नींद आई मूर्छा बनकर, गहरी बेहोशीका दुपट्टा ओढ़े,
जनतामेंसे न-जाने कौन सहसा उठ खड़ा हुआ,
अधिनेताकी ओर उंगली उठाकर बोल उठा,
'झूठा कहींका, हमें धोखा दिया तुमने !'
तिरस्कार एक कण्ठसे दूसरे कण्ठमें, क्रोध एक मनसे दूसरे मनमें
फैलता ही चला गया, धधक उठी हिंसा !

इतनेमें सहसा एक दुस्साहसी उठा, महामूर्च्छा थी उसकी सहचरी,
उसने वार किया भक्तपर, मार डाला अधिनायकको।
अँधेरेमें उसका चेहरा नहीं दिखाई दिया।
एकके बाद एक उठते ही गये लोग, चोटपर चोट करते ही गये सब,
नेताकी प्राणहीन देह जमीनसे जा लगी, मिट्टी मिट्टीसे जा मिली।
निशीथ रात है, चारों ओर गहरा सन्नाटा।
झरनेका झरझर कलगान क्षीण हो आया।
हवाके साथ चली आ रही है जूहीकी मीठी गन्ध।

यात्रियोंका मन आशंकाके पंजेमें मूर्छित-सा पड़ा है।
स्त्रियाँ रो रही हैं, पुरुष झुंझलाकर डाट रहे हैं, 'चुप!'
कुत्ता भूंक उठता है;
चाबुक खाकर आर्तनादमें उसका कण्ठ रुक जाता है।
रात बीतना ही नहीं चाहती।
अपराधकी नालिश लिये-हुए स्त्री-पुरुषोंका तर्क तीव्र होता रहता है।
सभी चिल्लाते हैं, चीखते हैं, गरजने लगते हैं;
अन्तमें मियानमेंसे कटार निकलना चाहती है।

इतनेमें अँधेरा क्षीण हुआ, पौ फटी,
प्रभातका प्रकाश पहाड़की चोटी तक फैल गया, आकाश चमक उठा,
सहसा सबके सब स्तब्ध हो गये।
सूर्यकिरणोंकी उँगलीने आकर
रक्ताक्त मृत मानवके शान्त ललाटका स्पर्श किया।

स्त्रियाँ फूटफूटकर रोने लगीं, पुरुषोंने अपना मुंह ढक लिया दोनों हाथोंसे;
कोई-कोई आँख बचाकर भागना चाहता है, पर भागते नहीं बनता;
कसूरकी जंजीरोंसे अपनी बलिके आगे वे बँधे खड़े हैं।
आपसमें एक दूसरेसे पूछते हैं, 'कौन हमें राह दिखायेगा?'

पूर्वदेशके वयोवृद्धने कहा,
'हमने जिसे मारा है वही दिखायेगा ।'
सबके सब निरुत्तर हैं, सिर झुकाये खड़े हैं ।
वृद्धने फिर कहा, 'संशयसे उसे हमने अस्वीकार किया है,
क्रोधसे हमने उसकी हत्या की है,
प्रेमसे अब हम उसे ग्रहण करेंगे,
कारण, मृत्युसे वह हम-सबके जीवनमें संजीवित है,
वही तो है महामृत्युञ्जय ।'

सबके सब एकसाथ खड़े हो गये ; कण्ठ मिलाकर एकसाथ गा उठे,
'जय मृत्युञ्जयकी जय !'

मानवात्मा जाग उठी, हजारों-लाखों कण्ठोंकी निर्झरध्वनि बोल उठी,
'चलो चलें, प्रेम-तीर्थकी यात्रा करें, शक्ति-तीर्थके दर्शन करें ।'
अब कोई रास्ता नहीं पूछता, किसीके मनमें न संशय है न क्लान्ति ।
मृत अधिनेताकी महान आत्मा उनके साथ है, भीतर बाहर सर्वत्र ।
कहती है, 'रुको मत, साथियो,
अन्धी काली रातमेंसे हो हमें पहुँचना है मृत्युहीन ज्योतिर्लोकमें ।'
अँधेरेमें सब चलते हैं । मार्ग मानो अपने मानी खुद ही जानता हो ।
पाँवके नीचेकी धूल भी मानो नीरव स्पर्शसे दिशा बतलाती चलती हो ।
स्वर्गपथके यात्री नक्षत्रोंका दल मूक संगीतमें कहता है,
'साथियो, बढ़े चलो ।'
अधिनेताकी आकाशवाणी सुनाई देती है,
'अब देर नहीं, आ पहुँचे ।'

———

संस्कार

चित्रगुप्त ऐसे बहुतेरे पापोंका हिसाब बड़े-बड़े हरूफोंमें अपने खातेमें लिख रखते हैं, खुद पापियोंको जिनका पता तक नहीं रहता। इसी तरह, दुनियामें ऐसे पाप भी हुआ करते हैं जिन्हें सिर्फ मैं ही पाप समझता हूं, और कोई नहीं। जो बात मैं कहना चाहता हूं वह इसी तरहकी है। चित्रगुप्तके सामने जवाबदेही करनेके पहले ही अगर उसे कबूल कर लिया जाय, तो मैं समझता हूं, कसूरका बोझ कुछ हलका हो जायगा।

शनिवार, कार्तिक-पूर्णिमाका दिन था। हमारे मुहल्लेमें आम सड़कसे जैनोंका बड़ा-भारी जुलूस निकल रहा था। मैं अपनी स्त्री कलिकाके साथ मोटरमें बैठकर अपने मित्र नयनमोहनके घर जा रहा था; चायका न्योता था वहां।

मेरी स्त्रीका 'कलिका' नाम ससुर साहबका दिया हुआ है; उसके लिए मैं जुम्मेदार नहीं। नामके योग्य उनका स्वभाव नहीं था; कली अपना सब-कुछ छिपाये रहती है; पर इनका मतामत बिलकुल स्पष्ट था। बड़ाबाजारमें विलायती कपड़ेके खिलाफ जब वे पिकेटिंग करने गई थीं तब साथियोंने भक्तिमें आकर उनका नाम रखा था 'ध्रुवव्रता',

मेरा नाम है गिरीन्द्र । उनके दलवाले सब मुझे मेरी पत्नीके पतिके रूपमें ही जानते थे; मेरे अपने नामकी सार्थकतापर उनका जरा भी ध्यान नहीं था। विधाताकी कृपासे बाप-दादोंकी कमाईकी बदौलत मेरी भी थोड़ी-बहुत सार्थकता थी; और उसपर लोगोंकी नजर सिर्फ चन्दा लेते वक्त ही पड़ती थी।

स्त्रीके साथ पतिके स्वाभावका मेल न होनेसे ही शायद मेल अच्छा होता है, सूखी मिट्टीके साथ पानीके मेलकी तरह। मेरी प्रकृति बहुत ही ढीलीढाली है; कोई भी बात हो, मैं उसे ज्यादा जोरसे नहीं पकड़ रखता। पर मेरी स्त्रीकी प्रकृति बहुत ही कड़ी थी, जिस बातको पकड़ लेती उसे हरगिज नहीं छोड़ती। मेरी तो यह पक्की राय है कि हमारी घर-गृहस्थीमें जो अमन कायम रहा वह हम दोनोंके इस वैषम्यकी बदौलत ही।

सिर्फ एक जगह हम दोनोंमें जो विरोध रह गया था, वह आखिर दम तक नहीं मिटा। कलिकाकी धारणा थी कि मैं अपने देशको प्यार नहीं करता। अपनी धारणापर उसका अटल विश्वास था; और यही वजह है कि अपने देश-प्रेमका मैं ज्यों-ज्यों सबूत देता गया, त्यों-त्यों उसके कहे हुए बाहरी लक्षणोंके साथ मेल न बैठनेसे वह मेरे देश-प्रेमपर सन्देह ही करती गई।

बचपन ही से मैं किताबोंका कीड़ा रहा हूं। कोई नई किताब निकली नहीं कि मैं तुरत खरीद लाया। मेरे दुश्मन

भी इस बातको कबूल किये बगैर न रहेंगे कि मैं उन्हें पढ़ता भी हूं। और मित्र तो अच्छी तरह जानते हैं कि पढ़नेके बाद उनके विषयमें चरचा और तर्क-वितर्क किये बगैर मेरा खाना हजम नहीं होता। यहां तक कि मेरे इस तर्क-वितर्ककी चोटसे बचनेके लिए बहुतसे मित्रोंने मेरा साथ छोड़ दिया है; और अब तो उनमेंसे सिर्फ एक ही ऐसा बचा है जिसने हार नहीं मानी। बनविहारीको लेकर इतवारके दिन अब भी दरबार जमा करता है। मैंने उसका नाम रखा है 'कोनविहारी'।

किसी-किसी दिन हम दोनों छतके एक कोनेमें बैठकर बातचीतमें इतने गरक हो जाते कि रातके दो-दो बज जाते। जिन दिनों हम उस नशेमें चूर थे, वे दिन हमारे लिए सुदिन नहीं थे। जमाना ऐसा था कि अगर पुलिस किसीके घर 'गीता' देख लेती, तो उसे वह राजद्रोहका सबूत साबित करनेमें देर नहीं लगाती। उस जमानेके देशभक्त ऐसे थे कि किसीके घर अगर विलायती किताबका कोई फटा हुआ पन्ना भी पाते तो वे उसके मालिकको देशद्रोही समझ लेते। मुझे तो वे काले रंगका पलस्तरदार श्वेत-द्वैपायन मानते थे। मेरी बातको कोई अत्युक्ति न समझे तो मैं कहूंगा कि सरस्वतीका रंग सफेद होनेकी वजहसे उन दिनोंके देशभक्तोंने उनकी पूजा करना छोड़ दिया था; और ऐसी एक विचारधारा चल पड़ी थी कि लोग समझते थे, जिस सरोवरमें उनका सफेद कमल खिलता है उसके पानीसे देशकी तकदीरको

जलानेवाली आग बुझती नहीं बल्कि और ज्यादा धधकने लगती है।

सहधर्मिणीकी तरफसे सद्दृष्टान्त और लगातार ताकीदोंके बावजूद मैंने खादी नहीं पहनी। इसकी वजह यह नहीं कि खादीमें कोई दोष है या गुण नहीं है, या मैं पहनने ओढ़नेमें बहुत शौकीन हूं। बिलकुल उलटी बात थी, स्वदेशी चाल-चलनके खिलाफ बहुतसे कसूर मैंने किये होंगे, पर सफाई उनमें शामिल नहीं। मैली मोटी पोशाक और ढीलाढाला रहन-सहन मेरी आदतमें शुमार है। कलिकाकी भावधारामें स्वदेश-प्रेमको बाढ़ आनेके पहले मैं चौड़े पंजेके मामूली जूते पहना करता था और उनपर रोज-रोज कालिमा पोतना भूल जाता, मोजे पहननेको आफत समझता, कमीज कोट न पहनकर मामूली कुड़ता पहननेमें आराम पाता और उसके दो-एक बटन कम रहते तो उनका खयाल न करता; ये सब बातें हमारी-तुम्हारी दृष्टिमें मामूली भले ही हों, पर, परमात्मा झूठ न बुलाये, मुझे अपने दाम्पत्य-जीवनमें चिर-विच्छेद होनेकी आशंका होने लगी थी। कलिका जब-तब यही कहा करती, 'देखो, तुम्हारे साथ कहीं बाहर जानेमें मुझे बड़ी शरम मालूम होती है।' मैं कहता, 'मेरी अनुगामिनी बननेकी जरूरत नहीं, मुझे छोड़कर तुम जहाँ जी चाहे जा सकती हो।'

आज जमाना बदल गया है; पर मेरी किस्मत नहीं बदली; आज भी कलिका वही बात कहती है, 'तुम्हारे साथ बाहर जाने में मुझे बड़ी शरम मालूम होती है।' कलिका पहले जिस दलमें

शामिल हुई थी उसकी वर्दी मैंने नहीं पहनी, और आज जिस दलमें शरीक है उसकी वर्दी भी मुझसे नहीं अपनाई गई। मेरे बारेमें मेरी स्त्रीकी शरम ज्योंकी त्यों बनी ही रही। इसे मेरे ही स्वभावका दोष समझना चाहिए। चाहे किसी भी दलका हो, भेष धारण करनेमें मुझे संकोच होता है। उस संकोचको मैं किसी भी तरह छोड़ न सका। और उधर, कलिका भी आपसको मतभेद खतम करके मेरे रहन-सहनको बरदाश्त न कर सकी। झरनाकी धारा जैसे घूम-फिरकर मोटे पत्थरपर बार-बार चोट करके उसे धकेलनेकी व्यर्थ कोशिश करती रहती है उसी तरह कालिकासे भी भिन्न-रुचिवालोंपर चलते-फिरते दिन-रात चोट पहुंचाये बगैर नहीं रहा जाता ; 'अलग राय' नामकी चीज का स्पर्श लगते ही मानो उसकी रगोंमें झुरझुरी-सी उठ खड़ी होती और उससे वह बेचैन हो जाती।

कल चायके निमंत्रणमें जानेके पहले मेरी खादी-हीन पोशाक पर कलिकाने कमसे कम एक हजार एक बार आपत्ति की होगी ; और तारीफ यह कि उसमें मिठासका लेशमात्र नहीं। जरा कुछ बुद्धिका अभिमान होनेसे मैं भी उसकी डाट-फटकारको बिना तर्कके शिरोधार्य न कर सका। आश्चर्य है, स्वभावको प्रेरणा आदमीको कैसी-कैसी फजूलकी कोशिशोंमें उत्साहित किया करती है। मुझसे भी एक हजार एक बार जवाब दिये बगैर न रहा गया, मैं भी बराबर चुटकियां ले-लेकर कलिकाको जवाब देता गया, 'औरतें विधाताकी दी हुई आँखोंपर काली किनारीकी साड़ीका मोटा घूंघट खींचकर आचारके साथ आँचलका

गठबन्धन करके चला करती हैं। मननकी अपेक्षा माननेमें ही उन्हें ज्यादा आराम मिलता है। जिन्दगीके सभी चलन व्यवहारोंको अबतक वे रुचि और बुद्धिके स्वाधीन क्षेत्रसे घसीटकर संस्कारके जनानखानेमें ले जाकर परदानशीन नहीं बना डालतीं तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता। आचार-विचारोंसे जर्जरित हमारे इस देशमें खादी पहनना माला-तिलकधारी धार्मिकताकी तरह ही एक संस्कार-सा बन गया है, इसीसे औरतोंको उससे इतनी खुशी होती है।

देवी कलिका मारे गुस्सेके तमतमा उठी। उसकी आवाज सुनकर बगलवाले मकानकी नौकरानी तक समझ गई कि स्त्रीकी इच्छानुसार पूरे वजनके गहने गढ़ा देनेमें पतिने जरूर धोखा दिया है। कलिकाने कहा—"देखो, खादी पहननेकी पवित्रता जिस दिन गंगा-स्नानकी तरह देशके लोगोंके हृदयमें संस्कार बनकर बैठ जायगी उसी दिन देश जी सकता है। विचार जब स्वभावके साथ घुल-मिलकर एक हो जाते हैं तब वे आचार बन जाते हैं। विचार जब आचारमें दृढ़ताका रूप धारण कर लेते हैं तभी उन्हें संस्कार कहा जाता है; तब फिर आदमी आँख मीचकर काम करता है, तुम्हारी तरह आँख खोलकर दुविधामें डाँवाडोल नहीं होता रहता।"

ये शब्द अध्यापक नयनमोहनके कहे हुए आप्त-वाक्य हैं। उससे उद्धृतिके चिह्न सिर्फ घिस गये हैं। और कलिकादेवी समझती हैं कि ये उनके निजी विचार हैं।

जिस महापुरुषने यह कहावत चलाई थी कि 'गूंगेके दुश्मन

नहीं होते' वे जरूर अविवाहित थे। मैंने कुछ जवाब नहीं दिया तो कलिका पहलेसे दूनी झमककर बोली—"वर्णभेदको तुम सिर्फ मुंहसे ही नहीं मानते, वरना अमलमें तो कभी लाते नहीं देखा। हम लोगोंने खादी पहन-पहनकर उस भेदभावपर अखंड सफेद रंग चढ़ा दिया है, आवरण-भेदको उठाकर वर्णभेदकी खाल उधेड़ दी है।"

मैं कहना ही चाहता था कि 'मुँहसे वर्णभेदको तो मैं तभीसे नहीं मानता जबसे मुसलमानके हाथका बना मुरगीका झोर मानने लगा हूं। और यह मेरा कंठस्थ वाक्य नहीं, बल्कि कंठस्थ कार्य है, जिसकी गति भीतरकी ओर है। लेकिन तुम्हारा जो वर्णभेदका ढकना है वह तो बाहरी चीज है; उससे ढका ही जा सकता है, धो-पोंछकर मिटाया नहीं जा सकता।' पर मेरी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। मैं कायर पुरुष ठहरा, चुप रह गया। क्योंकि मैं जानता हूं, आपसमें हम जिन युक्तियोंके बलपर बहस छेड़ते हैं, कलिका उन्हें अपने मित्रोंके घर ले जाकर धोबीके घरके कपड़ोंकी तरह भट्टा चढ़ाकर पछाड़-पछाड़कर साफ कर लाती है। भारतीय दर्शनके अध्यापक नयनमोहनके यहांसे प्रतिवाद लाकर वह मुझे सुनाती है और अपनी चमकती हुई आंखोंकी नीरव भाषामें मुझे कहती रहती है—"क्यों, अब तो आई अक्ल ठिकाने!"

नयनमोहनके घर जानेकी मेरी जरा भी इच्छा नहीं थी। मैं निश्चित जानता था कि वहां चायकी टेबिलपर गरम चायके धुआंकी तरह ही इस विषयकी सूक्ष्म चरचा छिड़े बगैर न रहेगी

कि हिन्दू-संस्कृति और स्वाधीन बुद्धि, आचार और विचारका आपेक्षिक स्थान क्या है, और उस आपेक्षिकताने हमारे देशको और सब देशोंसे उन्नत स्थान क्यों दिया है; और इससे यहाँका वातावरण गीला और धुँधला हो जायगा। इधर सुनहरी जिल्दोंसे सुशोभित अखंडित-पत्रवती नवीना पुस्तकें हाल ही दुकानसे आकर मेरे तकियाके पास प्रतीक्षा कर रही थीं; अभी सिर्फ शुभदृष्टि ही हुई है, उनके ब्राउन-रैपरोंके घूंघटपट अभी तक नहीं खुले, उनके सम्बन्धमें मेरा पूर्वराग हृदयके भीतर क्षण-क्षणमें प्रबल होता जा रहा था। फिर भी स्त्रीके साथ बाहर जाना पड़ा, कारण ध्रुवप्रताका इच्छावेग टकरा जानेसे वह उसके वाक्य और अवाक्यमें ऐसा तूफानी भँवर बन जाता है कि जिसका चक्कर मेरे लिए किसी भी तरह स्वास्थ्यप्रद नहीं रहता।

घरसे निकलकर मोटर गली पार करके बड़ी सड़कपर पहुंच भी न पाई कि देखा सामने हलवाईके दुकानके आगे भीड़ जमा है और शोर हो रहा है। हमारे पड़ोसके मारवाड़ी तरह-तरहकी कीमती पोशाक पहनकर जुलूसमें शामिल होने जा रहे थे। मेरी गाड़ी सामने भीड़ देखकर रुक गई। सुना कि लोग 'मारो' 'मारो' चिल्ला रहे हैं। मैंने समझा कि कोई पाकेटमार पकड़ा गया होगा।

मोटर अपना भोंपा बजाती हुई धीरे-धीरे आगे बढ़कर जब उत्तेजित जनताके पास पहुंची तो देखा कि लोग हमारे मुहल्लेके बूढ़े सरकारी मेहतरको पीट रहे हैं। वह गलीके सरकारी नलसे बालटी भरकर झाड़ू बगलमें दबाये जा रहा था, किसीसे छू

गया है। साथ था उसका आठ सालका नाती। नाती रो रहा है और अपने बाबाको छोड़ देनेके लिए निहोरे कर रहा है। दोनों ही साफ-सुथरे कपड़े पहने थे, और देखनेमें तनदुरुस्त मालूम होते थे। बूढ़ा कह रहा था—"गलती हो गई हुजूर, माफ कर दीजिये।" पर इससे अहिंसाव्रती पुण्यार्थियोंका गुस्सा घटनेकी बजाय और-भी ज्यादा बढ़ता जाता था। बूढ़ेकी आँखोंसे दरदर आँसू बह रहे थे और ठोड़ीसे टपटप खून।

मुझसे सहा नहीं गया। उनके साथ झगड़नेके लिए उतरना मेरे लिए सम्भव न था। मैंने तय किया कि बूढ़े मेहतर और उसके नातीको अपनी मोटरमें बिठाकर दूर ले जाकर छोड़ दूं और अपनी सहधर्मिणीको दिखा दूं कि मैं तथाकथित धर्मात्माओंके दलमें नहीं हूँ।

मेरी चंचलता देखकर कलिका मेरे मनकी बात शायद समझ गई। उसने कसके मेरा हाथ पकड़ लिया; बोली—"तुम कर क्या रहे हो, मेहतर है!"

मैंने कहा—"होने दो मेहतर, इससे क्या लोग उसे मारेंगे?"

कलिकाने कहा—"कसूर तो उसीका है, बीच रास्तेसे चलता क्यों है? एक किनारेसे बचके नहीं जाया जाता उससे?"

मैंने कहा—"सो मैं नहीं जानता। उसे मैं गाड़ीमें बिठाके ले चलूँगा।"

कलिकाने कहा—"तो मैं यहीं गाड़ीसे उतरी जाती हूँ। मेहतरको तुम गाड़ीमें नहीं चढ़ा सकते। चमार-कोरी होता तो बात भी थी, आखिर मेहतर है!"

मैंने कहा—"होने दो मेहतर, देखती नहीं, साफ-सुथरे कपड़े पहने है, नहा-धो चुका है, इनमेंसे बहुतोंसे साफ-सुथरा है।"

"इससे क्या हुआ, है तो मेहतर ही!"—इतना कहकर उसने ड्राइवरको हुक्म दिया—"गंगादीन ले चलो गाड़ी।"

मेरी हार हुई। कायर हूँ मैं।

उस दिन नयनमोहनने अपनी गंभीर युक्तियोंसे अपेक्षावादकी बालकी खाल निकालकर रख दी; पर उनमेंसे एक भी मेरे कानों तक नहीं पहुंची; और न मैंने उनका कोई जवाब ही दिया।

जय-पराजय

१

राजकुमारीका नाम था अपराजिता। राजा उदयनारायणके सभाकवि शेखरने राजकुमारीको कभी आँखोंसे देखा भी न था। पर, जब वे अपनी कोई नई रचना राजसभामें बैठकर सुनाते, तो अपना कंठस्वर इतना ऊँचा करके पढ़ते कि उनकी कविता ऊंचेसे ऊँचे महलोंमें झरोखोंके पास बैठी हुई अदृश्य श्रोत्रियोंके कानोंमें भी रस घोल सकती थी। मानो वे किसी एक ऐसे अगम्य नक्षत्रलोकके लिए अपना संगीतोच्छ्वास भेजते रहते जहांकी ज्योतिष्कमंडलीमें उनके अपने जीवनका भी एक अपरिचित शुभग्रह अपनी अदृश्य महिमा लिये-हुए विराज रहा हो।

अपनी कल्पनाकी राजकुमारी कभी उन्हें छायाके रूपमें दिखाई देती तो कभी नूपुरोंकी झनकार बनकर सुनाई पड़ती। कवि बैठे बैठे सोचा करते, कैसे वे चरण होंगे जिनमें सोनेके नूपुर बँधे रहनेपर भी ताल-तालपर गीत गा रहे हैं? वे दोनों गुलाबी गोरे-गोरे मुलायम पाँव कदम-कदमपर न-जाने कितने सौभाग्य, कितनी कृपा और कितनी करुणाको लिये-हुए जमीनको छुआ करते होंगे। कविने अपने हृदयमें उन चरणोंकी प्रतिष्ठा कर ली; मौका पाते ही उनका मन वहाँ आकर लोट जाता और नूपुरोंकी झनकारके साथ अपना गीत शुरू कर देता।

परन्तु ऐसा तर्क, ऐसा संशय उनके भक्त हृदयमें कभी उठा ही नहीं कि जिस छायाको देखा है, जिन नूपुरोंकी झनकार सुनी है, वह किसकी छाया है, किसके नूपुर हैं।

राजकुमारीकी दासी मंजरी जब पनघटपर जाती तो शेखरके घरके सामनेसे ही निकला करती। आते-जाते कविके साथ उसकी दो-चार बातें बिना हुए न रहतीं। अनुकूल एकान्त मिलता तो वह सुबह-शाम शेखरके घर जाकर बैठती भी। जितनी बार वह पनघटपर जाती उतनी बार कामसे ही जाती हो, यह नहीं कहा जा सकता; और ऐसा भी नहीं कि बिना जरूरत यों ही जाती हो। पर पनघटपर जाते समय जरा-कुछ जतनके साथ एक रंगीन साड़ी और कानोंमें दो आम्र-मुकुल पहननेकी उसे क्या जरूरत पड़ जाती, इसका कोई उचित कारण ढूँढ़े नहीं मिलता।

लोग हँसते और कानाफूसी भी करते। लोगोंका इसमें

कुछ दोष भी न था। मंजरीको देखकर शेखरको विशेष आनन्द मिलता; और उसे छिपानेकी वे खास कोई कोशिश भी नहीं करते।

दासीका नाम था मंजरी; और विचारकर देखा जाय तो मामूली स्त्रीके लिए उतना ही नाम काफी था; पर शेखर उसमें जरा कवित्व मिलाकर उसे वसन्तमंजरी कहा करते। लोग सुनकर कहते—'क्या बात है!'

इसके सिवा कविके वसन्त-वर्णनमें—'मंजुल वंजुल मंजरी' अनुप्रास भी जहाँ-तहाँ पाये जाते। आखिर यहाँ तक नौबत पहुंची कि बात राजाके कानों तक पहुंच गई।

राजा अपने कविमें ऐसा रसाधिक्य पाकर बहुत ही खुश होते; और इसपर खूब हँसी-मजाक भी करते। शेखर भी उसमें शरीक हो जाते।

राजा हँसकर पूछते—"भ्रमर क्या सिर्फ वसन्तकी राजसभामें गाया ही करता है?"

कवि उत्तर देते—"नहीं तो, पुष्प-मंजरीका मधु भी चखा करता है।"

इस तरह सभी हँसते और आमोद किया करते। शायद अन्तःपुरमें राजकुमारी अपराजिता भी मंजरीसे कभी-कभी हँसी-मजाक किया करती होंगी; और मंजरी उससे नाखुश भी न होती होगी।

इसी तरह सच-झूठ मिलाकर आदमीकी जिन्दगी किसी तरह कट जाती है; कुछ विधाता गढ़ते हैं, कुछ आदमी अपने-

आप गढ़ लेता है और कुछ पाँच-जने मिलकर गढ़ देते हैं। जीवनको एक तरहकी काल्पनिक और अकाल्पनिक, वास्तव और अवास्तवकी पंचमेल मिठाई समझनी चाहिए, जो कभी बासी नहीं होती।

कवि जो गीत गाते हैं वे ही सत्य और सम्पूर्ण हैं। गीतोंका विषय वही होता—राधा और कृष्ण, वही चिरन्तन नर और चिरन्तर नारी, वही अनादि दुःख और अनन्त सुख। उन्हीं गीतोंमें उनकी अपनी यथार्थ बातें होतीं; और उन गीतोंकी सचाईको अमरापुरके राजासे लेकर दीन-दुःखी प्रजा तक सब अपनी-अपनी हृदय-कसौटीपर कसकर आजमा चुके हैं। उनके गीत सबकी जबानपर थे। चाँदनी खिलते ही, जरा दखिनी हवा चलते ही, देशमें चारों ओर न-जाने कितने बाग-बगीचोंमें कितनी नावोंपर, कितने झरोखों और कितने आँगनोंमें उनके रचे-हुए गाने गूँज उठते, उनकी ख्यातिकी कोई सीमा नहीं।

इस तरह बहुत दिन बीत गये। कवि-कविता रचते और राजा सुना करते; राजसभाके लोग वाहवाही देते। मंजरी पटघटको आती और अन्तःपुरके झरोखेसे कभी-कभी एक छाया आकर पड़ती; कभी-कभी नूपुरकी झनकार भी सुनाई देती।

२

इसी समय दाक्षिणात्यसे एक दिग्विजयी कवि राजसभामें उपस्थित हुए; और उन्होंने शार्दूलविक्रीडित छन्दमें राजाका स्तव-गान किया। वे अपने देशसे निकलकर मार्गमें समस्त राज-कवियोंको परास्त करते हुए अन्तमें अमरापुर पधारे हैं।

राजाने बड़े आदरके साथ कहा—"एहि, एहि !"

कवि पुंडरीकने दम्भ-भरे स्वरमें कहा—"युद्धं देहि !"

राजाके सम्मानकी रक्षा करनी होगी, युद्ध देना ही होगा ; किन्तु कवि शेखरको इस बातका अच्छी तरह अनुभव ही न था कि वाक्‌युद्ध कैसे किया या दिया जाता है। वे बहुत ही चिन्तित और शंकित हो उठे, रातको उन्हें नींद नहीं आई। उन्हें अपने चारों तरफ यशस्वी पुंडरीकका दीर्घ बलिष्ठ शरीर, सुतीक्ष्ण ऊँची नाक और दर्पोद्धत उन्नत मस्तक-ही-मस्तक दिखाई देने लगा।

सवेरा होते ही कम्पितहृदय कवि किसी कदर रणक्षेत्रमें पहुंचे। सवेरेसे ही सभा-भवन लोगोंसे खचाखच भर गया था, शोरगुलकी हद नहीं, आज नगरके और-सब काम-काज बिलकुल बन्द था। कवि शेखरने बड़ी मुश्किलसे मुँहपर मुसकराहट और प्रसन्नता लाकर प्रतिद्वन्द्वी कवि पुंडरीकको नमस्कार किया। पुंडरीकने बड़ी लापरवाहीके साथ सिर्फ जरा-सा इशारा करके नमस्कारका उत्तर दिया; और फिर अपने अनुयायी भक्तवृन्दोंकी ओर देखकर वे मुसकरा दिये।

शेखरने एक बार अन्तःपुरके झरोखोंकी ओर अपनी कटाक्ष-दृष्टि दौड़ाई ; समझ गये कि वहांसे आज सैकड़ों मृगनयनियोंकी कुतूहल-पूर्ण व्यग्र दृष्टियाँ इस जनतापर लगातार बरस रही हैं। कविका हृदय एक बार एकाग्रभावसे उस ऊर्ध्वलोकमें पहुंचकर अपनी जयलक्ष्मीकी वन्दना कर आया और मन ही मन बोला, 'यदि मेरी आज विजय हुई तो, हे देवि अपराजिते, उससे तुम्हारे ही नामकी सार्थकता होगी।'

तुरही और भेरी बज उठी। जयध्वनिके साथ सारी सभा उठ खड़ी हुई। सफेद वस्त्र पहने हुए राजा उदयनारायणने शरदृतुके प्रभातके शुभ्र मेघके समान धीरे-धीरे सभामें प्रवेश किया ; और सिंहासनपर आ विराजे।

पुंडरीक उठे और सिंहासनके सामने जा खड़े हुए। विशाल सभा-भवन स्तब्ध हो गया।

विशालकाय पुंडरीकने छाती फुलाकर और गर्दन ऊँची करके गम्भीरस्वरमें राजा उदयनारायणकी स्तुति शुरू की। कंठस्वर घरमें समाता ही नहीं, उसने विशाल सभा-भवनकी चारों तरफ की दीवारों, खम्भों और छतके नीचे समुद्रकी तरंगोंकी तरह अपनी गम्भीर गर्जनासे आघात-प्रतिघात करना और अपनी उस ध्वनिके वेगसे समस्त जनमंडलीके हृदयद्वारको थरथर कँपाना शुरू कर दिया। कविकी रचनामें कितना कौशल है, कितनी दस्तकारी है, राजा उदयनारायणके नामकी कितनी तरहकी व्याख्याएँ हैं, राजाके नामके अक्षरोंका कितनी तरफसे कितने प्रकारका विन्यास है, कितने छन्द हैं, कितने यमक हैं, कोई शुमार है!

पुंडरीक जब रचना सुनाकर अपने आसनपर जा बैठे, तो कुछ देरके लिए निस्तब्ध सभा-भवन उनके कंठकी प्रतिध्वनि और हजारों हृदयोंकी मूक विस्मय-गुंजनसे गूंज उठा ; और बहुत दूर-देशोंसे आये हुए पंडितगण अपना दाहना हाथ उठाकर गद्गद स्वरसे 'साधु, साधु' कर उठे।

राजाने शेखरके मुँहकी तरफ देखा। शेखरने भी भक्ति प्रेम

और अभिमान-भरी एक प्रकारकी सकरुण और संकोचपूर्ण दृष्टिसे राजाकी ओर देखा ; और धीरेसे उठके खड़े हुए। रामचन्द्रने जब प्रजानुरंजनके लिए दूसरी बार अग्नि-परीक्षा करना चाही थी, तब सीता मानो इसी तरह अपनी पतिके मुँहकी ओर देखती हुई ठीक ऐसे ही उनके सिंहासनके सामने जाकर खड़ी हो गई थीं।

कविकी दृष्टिने चुपकेसे राजाको जताया—'मैं तुम्हारा ही हूं। तुम्हीं यदि संसारके सामने मुझे खड़ा करके परीक्षा लेना चाहते हो, तो लो। किन्तु—' उसके बाद आँखें नीची कर लीं।

पुंडरीक सिंहकी तरह खड़ा था और शेखर चारों तरफसे शिकारियोंसे घिरे हुए हरिणकी तरह। शेखर तरुण युवक है, रमणियों जैसी लज्जा और स्नेह-कोमल सुन्दर चेहरा है उसका, पाण्डुवर्ण कपोल हैं, और शरीरांश तो अत्यन्त स्वल्प है। देखनेसे मालूम होता है कि भावके स्पर्शमात्रसे ही सारा शरीर मानो वीणाके तारोंकी तरह काँपकर बज उठेगा।

शेखरने मुंह न उठाकर पहले तो अत्यन्त मृदुस्वरसे कहना प्रारम्भ किया। पहलेका एक श्लोक तो शायद किसीने अच्छी तरह सुन भी न पाया। उसके बाद धीरे-धीरे मुँह उठाया, जहाँ दृष्टि डाली वहाँसे मानो सारी जनता और राजसभाकी पाषाण-प्राचीर विगलित होकर बहुत दूरके अतीतमें विलीन हो गई। तरुण कविका मीठा और स्पष्ट कंठस्वर काँपते-काँपते उज्ज्वल अग्निशिखाकी तरह ऊपरको जाने लगा। पहले उन्होंने राजाके चन्द्रवंशीय आदि-पुरुषोंकी कथा शुरू की। फिर धीरे धीरे न-जाने कितने युद्ध-विग्रह, शौर्य-वीर्य, यज्ञ, दान और कितने

महान अनुष्ठानोंका सुन्दर वर्णन करते हुए अपनी राज-कहानीको वर्तमान कालमें ले आये। अन्तमें उन्होंने अपनी दूरकी स्मृतिमें उलझी हुई दृष्टिको खींचकर राजाके मुँहकी ओर देखा; और राज्यके समस्त प्रजा-हृदयकी एक महान अव्यक्त प्रीतिको भाषा और छन्दसे मूर्तिमान बनाकर सभाके बीचमें खड़ा कर दिया। मानो दूर-दूरान्तरसे सैकड़ों-हजारों प्रजाओंके हृदय-स्रोतसे दौड़-दौड़कर राज-पितामहोंके इस अतिप्राचीन प्रासादको महा संगीतसे भर दिया; मानो राज-प्रासादकी प्रत्येक ईंटको उसने स्पर्श किया, आलिंगन किया, चुम्बन किया और अन्तमें ऊपर अन्तःपुरके झरोखों तक पहुंचकर राजलक्ष्मी-स्वरूपा प्रासाद-लक्ष्मियोंके चरणोंमें स्नेहार्द्र भक्तिभावसे लौट गया; और फिर वहाँसे लौटकर राजाकी, राजाके सिंहासनकी अत्यन्त उल्लासके साथ सैकड़ों बार प्रदक्षिणा करने लगा। अन्तमें कविने कहा—"महाराज, वाक्योंमें पराजय मान सकता हूं, किन्तु भक्तिमें मुझे कौन हरा सकता है?" और कहकर काँपते हुए वे अपने आसनपर बैठ गये। प्रजागण आँसुओंसे भीगे कंठसे जयध्वनि कर उठे। पुंडरीक अपनी धिक्कारपूर्ण हँसीसे साधारण जनताकी इस उन्मत्तताकी अवज्ञा करते हुए फिर खड़े हुए और गर्वपूर्ण गर्जनके साथ पूछा—"वाक्यसे बढ़कर श्रेष्ठ और कौन है?"

सब लोग उसी क्षण स्तब्ध हो गये।

और पुंडरीक अनेक छन्दोंमें अद्भुत पाण्डित्य प्रकट करते हुए वेद-वेदान्त और आगम-निगमोंसे प्रमाणित करने लगे कि 'विश्वमें वाक्य ही सर्वश्रेष्ठ है; वाक्य ही सत्य है, वाक्य ब्रह्म

है; ब्रह्मा विष्णु महेश वाक्यके वशमें हैं; अतएव वाक्य उनसे भी बड़ा है। ब्रह्मा चार मुखोंसे वाक्यको समाप्त नहीं कर पाये हैं, पंचानन पाँच मुखोंसे वाक्यका अन्त न पाकर अंतमें चुपचाप ध्यानमें लीन होकर वाक्य ढूंढ़ रहे हैं।'

इस तरह पाण्डित्यपर पाण्डित्य और शास्त्रपर शास्त्रके ढेर लगा कर वाक्यके लिए एक आकाशभेदी सिंहासन बनाकर वाक्यको मर्त्यलोक और सुरलोकके मस्तकपर बिठा दिया; और बिजलीकी तरह कड़ककर फिर पूछा—"वाक्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ और-कौन है?"

पुंडरीकने दर्पके साथ चारों तरफ देखा; जब किसीने उत्तर न दिया, तो धीरे-धीरे अपने आसनपर जाकर बैठ गये। पंडितगण 'साधु-साधु' 'धन्य-धन्य' करने लगे; राजा आश्चर्यसे देखते रह गये; और कवि शेखरने इस विपुल पाण्डित्यके सामने अपनेको क्षुद्र समझ लिया। आजके लिए सभा भंग हो गई।

३

दूसरे दिन कवि शेखरने आकर अपना गान शुरू किया। वृन्दावनमें पहले-पहल जब वंशी बजी थी तब गोपियोंको मालूम नहीं था कि कौन बजा रहा है और कहाँ बज रही है। एक बार मालूम हुआ कि दक्षिण-पवनमें बज रही है; एक बार मालूम हुआ कि उत्तरमें गिरि-गोवर्द्धनके शिखरसे ध्वनि आ रही है। जान पड़ा कि उदयाचलके ऊपर खड़ा हुआ कोई मिलनेके लिए बुला रहा है; फिर जान पड़ा कि अस्ताचलके प्रांतमें बैठकर कोई बिरहके शोकसे रो रहा है। फिर ऐसा लगा कि यमुनाकी

प्रत्येक तरंगसे वंशीकी धुन उठ रही है, जान पड़ा कि आकाशका प्रत्येक तारा मानो उसी वंशीका छिद्र है। अंतमें कुंज-कुंजमें, राह-घाटमें, फूल-फूलमें, जल-स्थलमें, ऊपर-नीचे, भीतर-बाहर सब जगह वंशी बजने लगी। वंशी क्या बोल रही है, यह कोई न समझ सका; और वंशीके उत्तरमें हृदय क्या कहना चाहता है इसका भी किसीसे निर्णय करते नहीं बना। सिर्फ दोनों आँखोंमें आँसू भर आये; और अलोकसुन्दर श्याम-स्निग्ध मृत्युकी आकांक्षासे समस्त हृदय मानो उत्कंठित हो उठा।

सभाको भूलकर, राजाको भूलकर, स्वपक्ष और विपक्षको यश-अपयश, जय-पराजय, उत्तर-प्रत्युत्तर सब-कुछ भूलकर शेखर अपने निर्जन हृदय-कुंजमें अकेले खड़े-खड़े उस वंशीका मधुर गीत गाते ही चले गये। उन्हें सिर्फ याद थी एक ज्योतिर्मयी मानस-मूर्तिकी; कानोंमें सिर्फ उसीके कमल-चरणोंकी नूपुरध्वनि बज रही थी। कवि शेखर जब अपना संगीत पूरा करके बहिर्ज्ञानशून्य होकर अपने आसनपर बैठ गये, तब एक अनिर्वचनीय माधुर्यसे आकाश-व्यापी एक तरहकी विरह-व्याकुलतासे सभा-भवन भर गया; किसीके मुँहसे 'साधु-साधु' भी न निकला।

इस भावकी प्रबलताका कुछ उपशम होनेपर पुंडरीक राज-सिंहासनके सामने जा खड़े हुए। प्रश्न किया—"कौन राधा है और कृष्ण?" कहकर चारों तरफ देखा; और अपने शिष्योंकी ओर देखकर जरा मुसकराकर फिर पूछ उठे—"कौन राधा है और कौन कृष्ण?" और फिर असाधारण पाण्डित्य दिखाते हुए उन्होंने स्वयं ही उसका उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया।

कहने लगे—"राधा प्रणव हैं, ओंकार हैं; कृष्ण ध्यान हैं, योग हैं, और वृन्दावन दोनों भौंहोंका मध्य-बिन्दु है।" इड़ा, सुषुम्ना, पिङ्गला, नाभिपद्म, हृत्पद्म, ब्रह्मरन्ध्र सबको ला पटका। फिर, 'रा' का क्या अर्थ है और 'धा'का क्या, और कृष्ण शब्दके 'क' से मूर्द्धन्य 'ण' तक प्रत्येक अक्षरके कितने प्रकारके भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं उन सबकी एक-एक करके मीमांसा की। एक बार समझाया, कृष्ण यज्ञ हैं और राधिका अग्नि; फिर समझाया, कृष्ण वेद हैं और राधिका षड्दर्शन; उसके बाद समझाया, कृष्ण शिक्षा हैं और राधा दीक्षा; राधिका तर्क हैं और कृष्ण मीमांसा; राधिका उत्तर-प्रत्युत्तर हैं और कृष्ण जय-लाभ।

इतना कहकर राजाकी, और पंडितोंकी ओर और अन्तमें तीव्र अट्टहास्यके साथ शेखरकी ओर देखकर पुंडरीक गर्वके साथ अपनी जगह बैठ गये।

राजा पुंडरीककी इस आश्चर्यजनक शक्तिपर मुग्ध हो गये; पंडितोंके विस्मयकी सीमा न रही; और राधा-कृष्णकी नई-नई व्याख्याओंसे वंशीका गान, यमुनाकी लहरें प्रेमका मोह बिलकुल दूर हो गया; मानो किसीने आकर पृथ्वीपरसे वसन्तके हरे रंगको पोंछकर शुरूसे आखिर तक पवित्र गोबर लीप दिया। शेखर अपने इतने दिनोंके सहेज-सैंतकर रखे-हुए गीतोंको व्यर्थ समझने लगे। इसके बाद, फिर उनमें गीत गानेकी सामर्थ्य न रही। उस दिन भी सभा भंग हो गई।

४

दूसरे दिन पुंडरीकने फिर व्यस्त और समस्त, द्विव्यस्त और द्विसमस्तक, वृत्त, तार्क्य, सौत्र, चक्र, पद्म, काकपद, आद्युत्तर, मध्योत्तर, अन्तोत्तर, वाक्योत्तर, वचनगुप्त, मात्राच्युतक, च्युतदत्ताक्षर, अर्थगूढ़, स्तुतिनिन्दा, अपह्नुति, शुद्धापभ्रंश, शाब्दी, कालसार, प्रहेलिका आदि शब्दोंका प्रयोग करके ऐसी अद्भुत शब्द-चतुरी दिखाई कि सुनकर सभाके सब लोग आश्चर्यसे देखते रह गये।

शेखरकी पद-रचनाएँ अत्यन्त सरल होती थीं। उन्हें लोग सुख और दुःखमें, आनन्द और उत्सवमें हमेशा गाया करते थे। आज उन लोगोंने स्पष्ट समझ लिया कि मानो उनमें कोई खास खूबी थी ही नहीं; वे खुद भी चाहते तो वैसी रचना कर सकते थे। केवल अनभ्यास, अनिच्छा और अवसर न मिलनेके कारण ही नहीं कर पाते। नहीं तो बातें ऐसी कोई नई नहीं हैं, दुरूह भी नहीं हैं। उनसे संसारके लोगोंको कोई नई शिक्षा भी नहीं मिलती; और न कोई लाभ ही है। किन्तु आज जो कुछ सुना, वह तो एक अद्भुत चीज है। कल जो सुना था, उसमें भी काफी शिक्षा और मनन करनेका विषय था। दूर-देशके पुंडरीकके पाण्डित्य और निपुणताके सामने उन्हें अपना घरका कवि शेखर अत्यन्त बालक और साधारण व्यक्ति-सा मालूम होने लगा।

मछलीकी पूंछकी ताड़नासे पानीके अंदर जो गूढ़ आन्दोलन

चलता रहता है और सरोवरका कमल जैसे उसके प्रत्येक आघात को अनुभव करता रहता है, उसी तरह शेखर भी अपने हृदयमें अपने चारों तरफ बैठी हुई जनताके मनका भाव समझ गये।

आज अन्तिम दिन है। आज ही जय-पराजयका निर्णय होगा। राजाने अपने कविकी ओर देखा। उसका अर्थ यह था कि 'आज चुपकी साधनेसे काम न चलेगा, विजयके लिए तुम्हें शक्ति-भर प्रयत्न करना होगा।'

शेखर सभाके एक किनारेसे उठ खड़े हुए; उन्होंने सिर्फ दो-ही-एक बात कही—"हे वीणापाणि, हे श्वेतभुजा, देवि! स्वयं तुम्हीं यदि अपना कमल-वन सूना करके आज इस मल्ल-भूमिपर आ खड़ी हुई हो, तो हे देवि, तुम्हारे चरणासक्त जो भक्तजन अमृतके प्यासे हैं उनकी क्या दशा होगी?" शेखरने ये शब्द मुँहको जरा ऊपर उठाकर अत्यन्त करुणस्वरमें इस ढंगसे कहे मानो श्वेतभुजा वीणापाणि नीचेको दृष्टि डाले राजान्तःपुरमें झरोखेके सामने खड़ी हों।

इसपर पुंडरीक उठकर पहले तो खूब हँसे; और फिर 'शेखर' शब्दके अन्तिम दो अक्षरोंको लेकर धाराप्रवाह श्लोक रचते गये। कहने लगे—"पद्म-वनके साथ 'खर' का क्या सम्बन्ध है? और संगीतकी बहुत चर्चा करते रहनेपर भी इस प्राणीने क्या लाभ उठाया? सरस्वतीका अधिष्ठान तो पुंडरीक अर्थात् श्वेतकमलमें ही होता है। महाराजके शासनमें ऐसा उन्होंने क्या अपराध किया है जो यहाँ उन्हें खर-वाहन देकर अपमानित किया जाता है?"

इस प्रत्युत्तरको सुनकर पंडित लोग हँस पड़े। उपस्थित सभासद् भी उसमें शामिल हो गये। और उनकी देखादेखी सभाके और-सब लोग, जो समझे वे और जो न समझे वे भी हँसने लगे।

इसके उपयुक्त प्रत्युत्तरकी आशासे राजा अपने कवि-सखाको बार-बार अंकुशकी तरह अपनी तीक्ष्णदृष्टिसे ताड़ना देने लगे; पर शेखरपर उसका कुछ भी असर न हुआ; वे न-जाने किस ध्यानमें मग्न थे, उधर ध्यान ही न दे सके और चुपचाप अटल बैठे रहे।

तब राजा मन-ही-मन शेखरपर बहुत ही अप्रसन्न हुए। वे सिंहासनसे उतर आये; और अपने गलेसे मोतियोंकी माल उतारकर उन्होंने पुंडरीकके गलेमें पहना दी। सभाके सब लोग 'धन्य धन्य' कर उठे। और अन्त:पुरसे एकसाथ बहुतसे वलय, कंकण और नूपुरोंकी झनकार सुनाई दी; सुनकर शेखर अपने आसनसे उठे; और धीरे-धीरे सभा-भवनसे बाहर निकल गये।

५

कृष्णपक्षकी चतुर्दशीकी रात है। चारों तरफ घना अन्धकार है। फूलोंकी सुगन्ध लिये-हुए दखिनी हवा उदार विश्व-बन्धुकी तरह खुले हुए झरोखोंसे नगरके घर-घरमें प्रवेश कर रही है।

शेखरने अपने घरके काष्ठमंचसे अपनी सारी पोथियाँ उतार लीं; और अपने सामने उनका ढेर लगा लिया। उनमेंसे

छाँट-छाँटकर अपने रचे हुए ग्रन्थ अलग कर लिये, बहुत दिनोंके लिखे हुए बहुतसे ग्रन्थ थे। उनमेंसे बहुतसी रचानाओंको वे स्वयं भूल-से गये थे। उन्हें उलट-पुलटकर यहाँ-वहाँसे पढ़-पढ़कर देखने लगे। आज उन्हें अपनी ये सारी रचनाएँ तुच्छ-सी जान पड़ीं।

एक लम्बी साँस लेकर बोले—"सारे जीवनका क्या यही संचय है! थोड़ेसे शब्द और छन्द, थोड़ेसे अनुप्रास, बस!"

आज उन्हें अपनी उन रचनाओंमें कोई सौन्दर्य, मानव हृदयकी चिर-आनन्दपूर्ण कोई अभिव्यक्ति, विश्व-संगीतकी कोई प्रतिध्वनि, उनके हृदयका कोई गम्भीर आत्म-प्रकाश नहीं दिखाई पड़ा। रोगीको जैसे कोई भी भोजन नहीं रुचता, मुँहमें आते ही उगल देता है, ठीक वैसे ही आज उनके हाथके पास जो कुछ भी आया, सबको हटा-हटाकर फेंकते गये। राजाकी मैत्री, लोककी ख्याति, हृदयकी दुराशा, कल्पनाकी कुहुक, सब-कुछ आजकी इस अन्धकार रात्रिमें सारशून्य विडम्बना-सी मालूम होने लगी।

वे एक-एक करके अपनी सारी पोथियोंको फाड़-फाड़कर सामने जलती-हुई अँगीठीमें डालने लगे। अकस्मात् उन्हें एक उपहासकी बात याद उठ आई। हँसते-हँसते बोले—"बड़े-बड़े राजा-महाराजा अश्वमेध-यज्ञ किया करते हैं, आज मेरा यह काव्य-मेध यज्ञ है!" किन्तु उसी समय विचार उठा कि 'तुलना ठीक नहीं हुई। अश्वमेधका अश्व जब सर्वत्र विजयी होकर आता है तभी अश्वमेध होता है; और मैं, जिस दिन मेरा

कवित्व पराजित हुआ है उसी दिन काव्य-मेध करने बैठा हूं ; इससे बहुत दिन पहले ही कर डालता तो अच्छा रहता ।'

कविने एक-एक करके अपने समस्त ग्रन्थ अग्निको समर्पण कर दिये। आग जब धाँय-धाँय ऊँची लपटोंसे जलने लगी तब कविने अपने रीते हाथोंको शून्यमें फेंकते हुए कहा—"तुम्हें दे दिया, तुम्हें दे दिया, सब तुम्हें दे दिया। हे सुन्दरी अग्नि-शिखा, सब-कुछ तुम्हींको अर्पण कर दिया। इतने दिनोंसे तुम्हींको सर्वस्व आहुति देता आ रहा था, आज बिलकुल निःशेष कर दिया। बहुत दिनोंसे तुम मेरे हृदयमें जल रही थीं, हे मोहिनी वह्निरूपिणी, यदि मैं सुवर्ण होता तो उज्ज्वल हो उठता ; किन्तु तुच्छ तृण हूं तृण, इसीसे आज भस्म हो रहा हूं।"

रात आधी बीत चुकी। निशीथ रात्रिके सन्नाटेमें शेखर उठे ; और अपने घरकी सारी खिड़कियाँ उन्होंने खोल दीं। जो-जो फूल उन्हें पसंद थे उन्हें वे शामको ही बगीचेसे चुन लाये थे। सब सफेद फूल थे, जूही बेला और गन्धराज। उन्हींमेंसे एक-एक मुट्ठी लेकर अपनी साफ-सुथरी शैय्यापर बखेर दिये ; और घरके चारों तरफ दीपक जला दिये।

उसके बाद, मधुके साथ किसी जड़ीका विषरस मिलाकर उसे निगल गये ; मुँहपर चिन्ताकी कोई रेखा तक न थी। और फिर धीरे-धीरे अपनी उसी शय्यापर जाकर सो रहे। शरीर शिथिल हो आया और आँखें मिचने लगीं।

नूपुर बज उठे। हवाके साथ केश-गुच्छकी एक सुगन्धने घरमें प्रवेश किया।

कविने आँखें मींचे-ही-मींचे कहा—"देवि, भक्तपर दया की है क्या? इतने दिनों बाद क्या आज दर्शन देने आई हो?"

एक सुमधुर कंठसे उत्तर सुन पड़ा—"कवि, मैं आ गई।"

शेखरने चौंककर आँखें खोलीं ; और देखा, शय्याके सामने एक अपूर्व सुन्दरी रमणी-मूर्ति खड़ी है।

मृत्युसे आच्छन्न आँसुओंकी भापसे भरे हुए आकुल नेत्रोंसे साफ-साफ कुछ दिखाई नहीं दिया। इतना ही मालूम हुआ कि उनके हृदयकी वह छायामयी प्रतिमा ही भीतरसे निकलकर बाहर आ गई है और मृत्युके समय उनके मुँहकी तरफ स्थिरदृष्टिसे देख रही है।

रमणीने कहा—"मैं राजकुमारी अपराजिता हूं।"

कवि बड़े कष्टसे किसी तरह उठकर बैठ गये।

राजकुमारीने कहा—"राजाने तुम्हारे जय-पराजयका ठीक न्याय नहीं किया। तुम्हारी ही जय हुई है, कवि, इसीसे आज मैं तुम्हें जयमाला पहनाने आई हूं।"—कहकर अपराजिताने अपने हाथकी गुँथी पुष्पमाला अपने गलेसे उतारकर कविके गलेमें पहना दी।

मरणाहत कवि शय्यापर गिर पड़े।

पोस्ट-मास्टर

नौकरी लगते ही पोस्ट-मास्टरको ओलापुर गाँवमें जाना पड़ा। गाँव बहुत ही मामूली है। पास ही एक नीलकी कोठी है, उस कोठीके साहबने बड़ी कोशिशसे यहाँ नया पोस्ट-आफिस कायम कराया है।

हमारे पोस्ट-मास्टरका बचपन बीता है कलकत्तेमें। पानीकी मछलीको किनारेपर डाल देनेसे उसकी जैसी हालत होती है, इस छोटे-से गाँवमें आकर पोस्ट-मास्टरकी भी वही दशा हुई। एक अँधेरी मढ़ैयामें उनका आफिस है, पास ही एक गन्दा तालाब है और उसके चारों तरफ जंगल। कोठीमें जो गुमश्ता वगैरह मुलाजिम हैं उन्हें फुरसत ही नहीं कि किसीसे मिलें-जुलें; और फिर वे भले-आदमियोंसे मिलने-जुलनेके काबिल भी नहीं हैं।

खासकर कलकत्तेके लड़के तो अच्छी तरह मिलना-जुलना जानते ही नहीं। अपरिचित स्थानमें जाकर या तो वे उद्धत हो जाते हैं, या गुमसुम बने रहते हैं। यही वजह है कि गाँवके लोगोंसे पोस्ट-मास्टरका मेल-जोल न हो सका। इधर हाथमें काम-काज भी ज्यादा नहीं, जिसमें लगे रहें। कभी-कभी थोड़ी बहुत कविता लिखनेकी कोशिश करते हैं; और उसमें ऐसा भाव व्यक्त करते हैं कि मानो तमाम दिन पेड़-पत्तियोंका कम्पन और आकाशके मेघोंको देखकर ही जीवन बड़े सुखसे बीता जा रहा है; पर अन्तर्यामी ही जानते होंगे कि अगर 'अलिफ-लैला' का कोई

दैत्य आकर एक ही रातमें इन डाल और पत्तों समेत पेड़ोंको काटकर पक्की सड़क बना दे और उसके दोनों तरफ पंक्तिवार बड़े-बड़े पक्के मकान खड़े करके आकाशके मेघोंको दृष्टिके ओझल कर दे, तो बेचारे इस अध-मरे भले-आदमीके लड़केको फिरसे नवजीवन मिल जाय।

पोस्ट-मास्टरकी तनखा बहुत थोड़ी है। खुद राँधकर खाना पड़ता है, और गाँवकी एक पितृ-मातृ-हिन अनाथ बालिका उनका काम-काज कर देती है। उसे थोड़ा-बहुत खानेको दे दिया जाता है। लड़कीका नाम है रतन। उमर बारह-तेरह सालकी होगी। ब्याहको कोई खास उम्मीद नहीं मालूम होती।

संध्याके समय जब गाँवके ग्वालघरोंसे घना धुआँ उठता, चारों तरफसे झींगुर बोलने लगते, कुछ दूरपर गाँवके नशेबाज गवैयोंकी चौकड़ी ढोलक-मँजीरा बजाकर ऊँचे स्वरसे गाना शुरू कर देती, और जब अँधेरी मढ़ैयामें अकेले बैठे हुए कविके हृदयमें भी पेड़ोंकी कँपकँपी देखकर मामूली हृत्कम्प उपस्थित होता, तब घरके कोनेमें एक दिआ जलाकर पोस्ट-मास्टर पुकारते- "रतन !" रतन दरवाजेपर बैठी हुई इसी बुलाहटके लिए बाट देखती रहती, पर एक बार बुलानेपर भीतर न आती; कहती—"क्या है बाबूजी, काहे बुलाते हो ?"

पोस्ट-मास्टर—"तू क्या कर रही है ?"

रतन—"अभी चूल्हा सुलगाने जाऊंगी, रसोईमें—"

पोस्ट-मास्टर—"रसोईका काम पीछे कर लेना ; जरा हुक्का तो भर ला।"

कुछ ही देर बाद दोनों गाल फुलाकर चिलमपर फूंक मारती हुई रतन भीतर आती। उसके हाथसे हुक्का लेकर पोस्ट-मास्टर झट पूछ बैठते—"अच्छा रतन, तुझे अपनी माकी याद है?" उसकी माका बड़ा लम्बा किस्सा है; कुछ याद है, कुछ भूल गई। माकी अपेक्षा बाप उसे ज्यादा प्यार करता था। बापकी थोड़ी थोड़ी उसे याद है। मेहनत-मजूरी करके बाप शामको घर आता था। उन्हींमेंसे कोई-कोई संध्या उसके हृदयपर तसवीरकी तरह साफ-साफ अंकित है। किस्सा सुनाते-सुनाते रतन पोस्ट-मास्टरके पैरोंके पास जमीनपर बैठ जाती। उसे याद आती, उसके एक छोटा भाई था, बहुत दिनकी बात है, बरसातके दिनोंमें एक दिन छोटी तलैयाके किनारे दोनों भाई-बहन मिलकर पेड़की डालीकी वंसी बनाकर झूठमूठको मछली पकड़ना खेला करते थे। बहुत-सी बड़ी-बड़ी घटनाओंमेंसे यही एक बात उसे ज्यादा याद आती है। ऐसे ही बातचीत करते-करते कभी-कभी बहुत रात हो जाती, तब मारे आलसके पोस्ट-मास्टरकी रसोई बनानेकी तबीयत न होती। सवेरेकी बासी साग-तरकारी बची रहती और रतनी जल्दीसे चूल्हा सुलगाकर दो-चार रोटी सेंक लाती; उसीसे रातको दोनोंका पेट भर जाता।

कोई-कोई दिन, साँझको उस मढ़ैयाके कोनेमें आफिसकी चौकीपर बैठकर पोस्ट-मास्टर भी अपने घरकी बात छेड़ते; छोटे भाइयोंकी मा और जीजीकी, और प्रवासमें सूने घरमें बैठकर जिनके लिए हृदय व्यथित हो उठता उनकी बातें कहते। जो बातें हर घड़ी मनमें उठती रहतीं और जो नील-कोठीके गुमाश्तोंसे भी

नहीं कही जा सकती थीं वे ही बातें एक अशिक्षित और मामूली लड़कीसे कहते चले जाते, जरा भी हिचकिचाते नहीं। आखिर ऐसा हो गया कि लड़की बातचीत करते वक्त उनके घरवालोंको मा, जीजी, भइया कहने लगी, यहाँ तक कि उसने अपने छोटेसे हृदयपटपर उनकी कल्पनिक मूर्तियाँ भी चित्रित कर लीं।

एक दिन वर्षाऋतुके बादलोंसे मुक्त दोपहरको गरम-गरम नरम हवा चल रही थी; धूपसे भीगी घास और पेड़ पौधोंमेंसे एक प्रकारकी महक निकल रही थी, ऐसा मालूम होता था जैसे थकी हुई पृथ्वीकी गरम साँसें शरीरपर आकर टकरा रही हों और न-जाने कहाँकी एक जिद्दिन चिड़िया इस भरी दुपहरीमें प्रकृतिके दरबारमें अपनी तमाम शिकायतें बहुत ही करुणस्वरसे बार-बार पेश कर रही हो। पोस्ट-मास्टरके हाथमें कोई काम न था। उस दिन वर्षासे धुले हुए पेड़-पौधे, उनके चिकने कोमल पत्तोंकी हिलोरें और अपराजित वर्षाका भग्नावशिष्ट धूपसे चमकते हुए स्तूपाकार सफेद बादल सचमुच ही देखने लायक थे। पोस्ट मास्टर वही देख रहे थे, और सोच रहे थे, काश कि इस वक्त पासमें अगर कोई खास अपना आदमी होता, हृदयके साथ बिलकुल मिली हुई कोई स्नेह-पुतली मानव-मूर्ति होती! धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि वह चिड़िया उसी एक ही बातको बार-बार कह रही है और इस पेड़ोंकी छायामें डूबे हुए सुनसान दोपहरके पल्लव-मर्मरका अर्थ भी कुछ-कुछ वैसा ही है। कोई विश्वास नहीं करता, और जान भी नहीं पाता; पर छोटेसे गाँवके मामूली तनखा-वाले

सब-पोस्ट-मास्टरके मनमें इस गहरी गुमसुम दुपहरियामें छुट्टीके दिन ऐसा ही एक भाव उठा करता है।

पोस्ट-मास्टरने एक लम्बी साँस छोड़कर पुकारा—"रतन!" रतन उस वक्त अमरूदके पेड़के नीचे बैठी कच्चा अमरूद खा रही थी; मालिककी आवाज सुनकर तुरन्त दौड़ी आई और हाँफती हुई बोली—"बाबूजी, बुला रहे हो?" पोस्ट मास्टरने कहा—"तुझे मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ना सिखाऊँगा।" इसके बाद दोपहर भर उसे अ-आ इ-ई सिखाते रहते। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें उसे युक्ताक्षर तक पढ़ा दिया।

सावनका महीना है, वर्षाकी कोई हद नहीं। नहर, बम्बा, ताल, तलैया, नदी, नाले सबके सब पानीसे भर गये। रात-दिन मेढ़कोंकी टर्रटर्र और वर्षाकी झमझम सुनाई पड़ती रहती है। गाँवकी सड़कपर चलना-फिरना करीब-करीब बन्द हो गया है। नावपर बैठकर हाट जाना पड़ता है।

एक दिन सबेरेसे ही खूब बादल छा रहे थे। पोस्ट-मास्टरकी छात्रा बहुत देरसे दरवाजेपर बैठी बाट जोह रही थी; लेकिन और दिनकी तरह नियमित पुकार न सुननेके कारण अन्तमें खुद ही अपनी पोथी लेकर धीरे-धीरे घरके भीतर पहुंची। देखा, पोस्ट-मास्टर अपनी खाटपर पड़े हुए हैं; यह सोचकर कि आराम कर रहे हैं, उसने धीरेसे बाहर निकल जाना चाहा। सहसा सुनाई पड़ा—"रतन!" झटपट पीछेको लौटकर बोली—"बाबूजी! सो रहे थे न?" पोस्ट-मास्टरने करुणास्वरसे कहा—"तबीयत अच्छी नहीं मालूम देती, देख तो मेरे माथेपर हाथ रखकर?"

इस निहायत निःसंग प्रवासमें घनी-घनी बर्षासे रोग-पीड़ित शरीरको जरा सेवा पानेकी इच्छा होती है। तपते हुए माथेपर चूड़ियोंवाले कोमल हाथोंका स्पर्श याद आता है। इस घोर प्रवास में रोगकी पीड़ामें ऐसा सोचनेको जी चाहता है कि स्नेहमयी नारी रूपमें जननी और जीजी पास बैठी है। यहाँ भी प्रवासीकी मनकी अभिलाषा व्यर्थ न गई। बालिका रतन अब बालिका न रही। उसी क्षण उसने जननीका पद ले लिया, वैद्य बुला लाई, ठीक समयपर दवा खिला दी, सारी रात सिरहाने बैठी जागती रही, अपने-आप पथ्य बना लाई और सौ-सौ बार पूछती रही—'बाबूजी कुछ आराम मालूम पड़ता है ?'

पोस्ट-मास्टर कमजोर शरीर लेकर रोग-शय्यासे उठे ; मनमें इरादा कर लिया था कि बस अब नहीं, यहाँसे किसी भी तरह तबादला करना ही है। यहाँ तन्दुरुस्ती ठीक नहीं रहती, आब-हवा ठीक नहीं वगैरह लिखकर उसी समय कलकत्तेके अफसरको तबादलेके लिए अरजी लिखी।

रोगीकी सेवासे छुट्टी पाकर रतन फिर दरवाजेके बाहर अपनी जगहपर जा बैठी। पर पहलेकी तरह अब उसे कोई बुलाता नहीं। बीच-बीचमें झाँककर देखती, पोस्ट-मास्टर अनमने होकर चौकी पर बैठे हैं या खाटपर पड़े हैं। रतन जब बुलाहटकी प्रतीक्षामें बाहर बैठी रहती, तब वे अधीर चित्तसे अपनी अरजीके जवाबकी प्रतीक्षा करते रहते। बालिकाने दरवाजेपर बैठे-बैठे हजार बार अपना पुराना पाठ घोंकना शुरू किया। उसे डर था कि कहीं अचानक न पुकार बैठ ; और तब वह युक्ताक्षरोंको भूल गई, तो

क्या होगा ? अन्तमें एक सप्ताहके बाद एक दिन शामको पुकार हुई। घबराहटके साथ रतन भीतर गई ; बोली —"बाबूजी, मुझे बुला रहे थे ?"

"रतन, कल ही मैं चला जाऊँगा।"

"कहाँ चले जाओगे, बाबूजी ?"

"घर जाऊँगा।"

"फिर कब आओगे ?"

"अब नहीं आऊँगा।"

रतनने फिर कोई बात नहीं पूछी। पोस्ट-मास्टरने खुद ही उससे कहा—"मैंने तबादलेके लिए अरजी दी थी, अरजी मंजूर नहीं हुई। इसलिए काम छोड़कर घर चला जाऊँगा।"

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। एक कोनेमें दीआ टिमटिमाता रहा ; और एक जगह मकानकी पुरानी छत चूकर एक मिट्टीके सरवेमें टपटप बरसातका पानी टपकता रहा।

कुछ देर बाद रतन धीरेसे उठकर रसोई-घरमें रोटी बनाने चली गई। और-दिनकी तरह उसमें उतनी फुरती नहीं थी। शायद बीच-बीचमें उसे बहुत-सी चिन्ताएँ आ घेरती थीं। पोस्ट-मास्टर जब खाकर उठे तो बालिका अचानक पूछ बैठी— "बाबूजी, मुझे अपने घर ले चलोगे ?"

पोस्ट-मास्टरने हँसकर कहा—"सो कैसे हो सकता है !"

उन्होंने किन-किन कारणोंसे उसका जाना असम्भव है, यह बात बालिकाको नहीं समझाई, और न इसकी उन्हें कोई जरूरत ही महसूस हुई।

रात-भर, सपनेमें और जागतेमें बालिकाके कानोंमें पोस्ट-मास्टरकी वही एक हास्यध्वनि गूँजती रही—"सो कैसे हो सकता है !"

सवेरे उठकर पोस्ट-मास्टरने देखा कि उनके नहानेके लिए पानी तैयार है। कलकत्तेकी आदतके अनुसार वे बाल्टीमें रखे हुए पानीसे नहाते थे। किसी कारणसे बालिका उनसे यह न पूछ सकी कि किस वक्त वे जायेंगे। कहीं तड़के ही न जरूरत पड़े, इस खयालसे रतनने पौ-फटते ही नदीसे पानी लाकर रख दिया था। नहा चुकनेके बाद रतनकी पुकार हुई। रतन चुपचाप घरके भीतर पहुंची; और आज्ञा पानेकी आशासे उसने एक बार मालिकके मुँहकी ओर देखा। मालिकने कहा—"रतन, मेरी जगहपर जो बाबू आयेंगे उन्हें मैं कह जाऊँगा, वे तुझे मेरी ही तरह जतनसे रखेंगे। मैं जा रहा हूँ, इसके लिए तू फिकर मत कर।" ये बातें अत्यन्त स्नेह और दयार्द्र हृदयसे निकली थीं इसमें सन्देह नहीं; पर नारीके हृदयको कौन समझे? रतनने अनेकों बार मालिकके अनेक तिरस्कार चुपचाप सह लिये हैं, पर आजकी ये मीठी बातें उससे न सही गईं। वह एकसाथ सिसक-सिसककर रोने लगी; बोली—"नहीं नहीं, तुम किसीसे भी कुछ मत कहना, मैं नहीं रहना चाहती।"

पोस्ट-मास्टरने रतनका ऐसा व्यवहार कभी न देखा था, इससे वे दंग रह गये।

नया पोस्ट-मास्टर आया। उसे सारा चार्ज समझाकर

पुराने पोस्ट-मास्टर चलनेकी तैयारी करने लगे। चलते समय रतनको बुलाकर कहा—"रतन, तुझे मैं कभी भी कुछ दे नहीं सका हूं। आज जाते समय तुझे कुछ दिये जाता हूं, इससे तेरी कुछ दिनोंकी गुजर चल जायगी।"

अपने राह-खर्चके लिए थोड़ेसे रुपये निकालकर, जो भी कुछ तनखाके रुपये मिले उन्हें वे जेबसे निकालकर देने लगे। तब रतनने धूलमें लोटकर उनके पैर पकड़कर कहा—"बाबूजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, पैरों पड़ती हूँ, मुझे कुछ मत दीजिये। तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, मेरे लिए किसीको भी कुछ सोच करनेकी जरूरत नहीं।"—इतना कहकर वह वहाँसे भाग गई।

भूतपूर्व पोस्ट-मास्टर एक गहरी साँस लेकर हाथमें कार्पेटका बैग-लटकाये, कंधेपर छतरी रखे, मजदूरके सिरपर नीले और सफेद रंगकी लकीरोंसे रंगा-हुआ टीनका बकस रखवाकर धीरे-धीरे घाटकी तरफ चल दिये।

जब नावपर चढ़े और नाव छूट गई, वर्षाके पानीसे दूर तक फैली हुई नदी जब आवेगसे निकले हुए पृथ्वीके आँसुओंकी तरह चारों ओर चमकने लगी, तब हृदयके अन्दर वे एक गहरी वेदनाका अनुभव करने लगे; एक साधारण गाँवकी लड़कीका करुण चेहरा और उससे भी करुण आँसू-भरी आँखें मानो एक विश्वव्यापी बृहत् अव्यक्त मर्म-व्यथा बनकर उनके हृदयको व्यथित करने लगीं। एक बार बड़ी इच्छा हुई कि 'लौट चलूँ, संसारकी गोदसे छिटकी हुई इस अनाथ लड़कीको साथ लेता चलूं, पर तब पालमें हवा भर चुकी थी, वर्षाका स्रोत वेगसे

चल रहा था, नाव गाँव पार कर चुकी थी, नदीके किनारेकी श्मशान-भूमि दिखाई दे रही थी; और तब नदीके प्रवाहमें बहते हुए पथिकके व्यथित हृदयमें इस तत्त्वका उदय हो रहा था कि 'जीवनमें ऐसे कितने विच्छेद, कितनी मृत्यु होंगी, लौटनेसे फायदा? संसारमें कौन किसका है?'

पर रतनके मनमें किसी भी तत्त्वका उदय नहीं हुआ। वह बस पोस्ट-आफिसके चारों तरफ सिर्फ आँसू बहाती हुई घूम रही थी। शायद उसके मनमें क्षीण आशा जाग रही थी कि बाबूजी शायद लौट आवें; और इसी बन्धनमें पड़कर बेचारी कहीं दूर नहीं जा सकती थी। हाय, बुद्धिहीन मानव-हृदय, तेरी भ्रान्ति किसी तरह मिटती ही नहीं! युक्तिशास्त्रका विधान बहुत देरसे माथेमें घुसता है, प्रबल और साक्षात् प्रमाणका भी विश्वास न कर झूठी आशाको दोनों भुजाओंसे बाँधकर जी-जानसे छातीसे लगाता है; और आशा आखिर एक दिन तमाम नाड़ियोंको काटकर हृदयका खून चूसकर गायब हो जाती है, और तब होश आता है! लेकिन आश्चर्य है, फिर तुरत ही दूसरे भ्रान्तिजालमें पड़नेके लिए चित्त व्याकुल हो उठता है!

रामलालकी बेवकूफी

जो यह कहते हैं कि गुरुचरणके मरते वक्त उनकी दूसरी स्त्री घरमें बैठी ताश खेल रही थी वे विश्व निन्दक हैं, राईका पहाड़ बना देते हैं। असलमें बहूजी तब एक पाँवकी पालथीपर बैठकर दूसरे पैरका घुटना ठोड़ीसे लगाये कच्ची इमली, हरी मिर्च और

मछलीकी चरपरी भुजियाके साथ खूब मन लगाकर बासी भात खा रही थीं। बाहरसे जब पुकार पड़ी तो चबाये-हुए डंठल और जूठी पत्तलको फेंककर मुँह गम्भीर बनाकर बोलीं—"ए राम, बासी भातके दो गस्से पेटमें डाल लूँ, इतनी भी छूट्टी नहीं!"

इधर जब डाक्टरने जवाब दे दिया, तब गुरुचरणके भाई रामलालने रोगीके पास बैठकर धीरेसे कहा—"दद्दा, अगर तुम्हारी वसीयतनामा लिखनेकी तबीयत हो तो बताओ?" गुरुचरणने बहुत ही धीमे स्वरमें कहा—"मैं कहता जाता हूँ, तुम लिख लो।"

रामलाल कागज़ और दावात-कलम लेकर बैठ गये। गुरुचरण कहने लगे—'मैं अपनी स्थावर और जंगम तमाम सम्पत्ति अपनी धर्मपत्नी श्रीमती बरदासुन्दरीको देता हूं।' रामलालने लिखा तो सही, पर लिखते हुए उनकी कलम न चलती थी। उन्हें बड़ी उम्मीद थी कि उनका इकलौता बेटा नवद्वीप ही अपने पुत्रहीन ताऊजीकी तमाम जायदादका उत्तराधिकारी होगा। यद्यपि दोनों भाई अलहदा थे, तो भी, इसी आशासे नवद्वीपकी माने नवद्वीपको किसी भी तरह नौकरी नहीं करने दी, जल्दीसे उसका ब्याह भी कर दिया; और वह ब्याह निष्फल भी नहीं गया। लेकिन फिर भी रामलालने सब लिखा और दस्तखत करानेके लिए कलम भइयाके हाथमें दे दी। गुरुचरणने निर्जीव हाथसे जो दस्तखत किये, वह काँपती हुई टेढ़ीमेढ़ी लकीर थीं या दस्तखत, समझना मुश्किल था।

बासी भात खाकर श्रीमती बरदासुन्दरी जब उस कमरेमें आईं, तब गुरुचरणकी जबान बन्द हो चुकी थी। वरदा रोने

लगी। जो बहुत ज्यादा उम्मीदके बाद भी जायदादसे वंचित रह गये वे कहने लगे, 'दिखावटी रोना है!' परन्तु यह बात विश्वास-योग्य नहीं।

वसीयतनामेका हाल सुनते ही नवद्वीपकी मा दौड़ी आई; और शोर मचा दिया—"मरते समय बुद्धि बिगड़ जाती है। ऐसे अच्छे भतीजेके रहते—" वगैरह-वगैरह।

रामलाल यद्यपि स्त्रीके प्रति बहुत ज्यादा श्रद्धा रखते थे; इतनी ज्यादा कि दूसरे शब्दोंमें उसे 'डर' भी कहा जा सकता है, पर उनसे भी न रहा गया; वे लपकके आगे बढ़े और बोले— "अरी, तेरी बुद्धि तो नहीं बिगड़ी है, फिर तू क्यों ऐसा करती है? दादा चले गये, पर मैं तो हूं। तुझे जो कुछ कहना हो, किसी मौकेसे मुझसे ही कह लेना, अभी मौका नहीं है।"

नवद्वीपको इसकी खबर लगी, वह भी आ पहुंचा। पर तब तक ताऊजी परलोक सिधार चुके थे। नवद्वीपने मृत व्यक्तिको धमकी देकर कहा—"देख लूंगा, मुँहमें आग कौन देता है! मैं अगर श्राद्ध-शान्ति करूँ तो मेरा नाम नवद्वीप नहीं।" गुरुचरण यह-सब कुछ भी नहीं मानते थे। वह डफ साहबके छात्र थे। शास्त्रके अनुसार जो चीज सबसे ज्यादा अभक्ष्य होती, उसीके खानेमें उन्हें विशेष तृप्ति होती थी। लोग अगर उन्हें ईसाई कहते, तो वह दाँतों तले जीभ दबाकर कहते, 'राम राम, मैं अगर ईसाई होऊं तो गऊका मांस खाऊँ! जीवित दशामें जिसकी यह हालत थी, मरनेके बाद तुरत ही वह पिण्ड-नाशके डरसे जरा भी विचलित होगा यह सम्भव नहीं। पर मौजूदा हालतमें बदला लेनेका इसके

सिवा और कोई चारा ही न था। नवद्वीपको एक सहारा मिल गया, वह यह कि परलोकमें जाकर ताऊजी अवश्य ही भूखों मरेंगे। इस लोकमें 'ताऊजी' की जायदाद न मिलनेपर भी किसी तरह पेट तो भर जाता है; पर ताऊजी जिस लोकमें गये हैं वहाँ भीख माँगनेपर भी पिण्ड नहीं मिलता। यहाँ जिन्दा रहनेमें भी बहुतसे लाभ हैं।

रामलालने वरदासुन्दरीके पास जाकर कहा—"भाभी, भइया तुम्हींको सब-कुछ दे गये हैं। यह लो वसीयतनामा उनका; लोहेके सन्दूकमें हिफाजतसे रख देना।"

विधवा उस समय लम्बे-लम्बे पद रच-रचकर ऊँचे स्वरसे विलापकर रही थी, दो-चार दासियाँ भी उसके स्वरमें स्वर मिलाकर और बीच-बीचमें दो-चार नये शब्द जोड़कर शोक-संगीतसे सारे गाँवकी निद्रा दूर कर रही थीं। उसके बीचमें इस कागजके टुकड़ेने आकर कम-से-कम तान तोतोड़ ही दो, और भावोंका भी पूर्वापर सम्बन्ध टूट गया। मामलेने अब इस प्रकार आसंलग्न रूप धारण किया—"हाय, मेरी अम्मा री! हाय मेरी तकदीर फूट गई री-ई! अरी मेरी अम्मा री-ई! हाय! हाय देवरजी, यह लिखावट किसकी है? तुम्हारी? हाय, हाय, ऐसे जतनसे अब कौन रखेगा, हाय, मेरी ओर अब मुंह उठाकर कौन देखेगा, हाय! अरी मेरी अम्मा री-ई! —अरे जरा ठहर जा, ज्यादा चिल्ला मत, बात सुन लेने दे। —अरी, मेरी मैया री, मैं भो क्यों नहीं मर गई री-ई! मैं क्यों जिन्दा रही री-ई हाय!"

रामलालने मन-ही-मन गहरी साँस लेकर कहा—"यह हम लोगोंकी तकदीरका दोष है।"

घर जाकर नवद्वीपकी मा रामलालके सर हो ली। लदी हुई गाड़ी समेत अभागे बैल जैसे दलदलमें फँसकर गाड़ीवानके हजारों डंडे खाकर भी देर तक बेबसीसे चुपचाप खड़े रहते हैं, रामलाल भी ठीक उसी तरह देर तक चुपचाप सब सहते रहे; आखिरकार धीमे स्वरमें बोले—"मेरा क्या कसूर है? मैं तो दद्दा नहीं था?"

नवद्वीपकी मा फुसकारकर बोली—"नहीं, तुम बड़े भले आदमी हो, तुम कुछ नहीं जानते! दद्दाने कहा, लिखो, भाई वैसे ही लिखते गये! तुम सब एक-से हो! तुम भी बखत आनेपर ऐसी ही बुद्धिमानी करोगे, मुझे मालूम है! मेरे मरते ही किसी मुँहजली डाइनको घरमें ले आओगे; और मेरे नन्हे-से नवद्वीपको गहरे पानीमें बहा जाओगे। पर इसके लिए बेफिकर रहो, मैं जल्दी नहीं मरनेकी।"

इस तरह रामलालके भावी अत्याचारोंका जिक्र करके गृहिणी उत्तरोत्तर ज्यादा गरम होने लगी। रामलाल निश्चित जानते थे कि इन उत्कट काल्पनिक आशंकाको दूर करनेके लिए अगर उन्होंने जरा भी जीभ हिलाई तो उलटा नतीजा होगा। इस डरसे वे अपराधीकी तरह चुप बने रहे, मानो उनसे वे दोष बन ही गये हों, मानो वे नन्हें-से नवद्वीपको कुछ न देकर अपनी भावी पत्नीके नाम तमाम जायदादका वसीयतनामा लिखकर मर ही चुके हों। और अब बिना इस कसूरको मंजूर किये कोई चारा ही नहीं।

इतनेमें नवद्वीप अपने बुद्धिमान मित्रोंसे खूब सलाह-मशविरा

करके घर आया; और मासे बोला—"मा, कोई चिन्ता नहीं। यह जायदाद मुझे ही मिलेगी। कुछ दिनके लिए बापूजीको यहाँसे कहीं रवाना कर देना चाहिए। वे रहेंगे तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।" नवद्वीपके बापकी बुद्धिपर नवद्वीपकी माको जरा भी श्रद्धा न थी; इसलिए लड़केकी बात उन्हें भी युक्तिसंगत मालूम हुई। आखिरको रात-दिनकी झकझक या ताड़नासे तंग आकर बिलकुल अनावश्यक और सब काम चौपट करनेवाला कमअक्ल बाप किसी बहानेसे कुछ दिनके लिए काशी चला गया।

थोड़े ही दिनोंमें वरदासुन्दरी और नवद्वीपचन्द्र दोनों एक दूसरेपर जाली वसीयतनामा बनानेका मुकदमा दायर करके अदालतमें पहुँचे। नवद्वीपने जो अपने नामका वसीयतनामा निकाला है उसके दस्तखत देखनेसे साफ मालूम पड़ता है कि वे गुरुचरणके ही हैं। उसके दो-एक गवाह भी मिल गये हैं। वरदासुन्दरीकी तरफ नवद्वीपके पिता ही एकमात्र गवाह हैं, और दस्तखतको तो कोई समझ ही नहीं सकता। वरदासुन्दरीका एक भाई है, जो उन्हींके घर रहता है, उसने कहा—"जीजी, तुम कुछ सोच मत करो। मैं गवाही खुद दूँगा, और-भी बहुतसे तलाश कर लाऊँगा।"

मामला जब पूरी तरहसे पेचीदा हो चुका, तो नवद्वीपकी माने नवद्वीपके बापको काशीसे चले आनेके लिए लिख भेजा। बेचारा आज्ञाकारी भलामानस पति बैग और छाता हाथमें लिये ठीक वक्तपर हाजिर हुआ। और तो क्या, कुछ रसालाप करनेकी भी कोशिश की; हाथ जोड़कर हँसते हुए बोला—"गुलाम हाजिर है, महारानी साहिबाका क्या हुक्म है, फरमाया जाय?"

घर-मालिकिनने सिर हिलाकर कहा—"बस, रहने दो ! देख लिया। यह ऊपरी हँसी-मजाक अब रहने दो। इतने दिन काशीमें बिता आये, कभी एक दिनके लिए याद भी किया ?" वगैरह-वगैरह ।

इसी तरह दोनों ओरसे बहुत देर तक एक दूसरेपर प्रेमका दोषारोपण होता रहा ; और अन्तमें वह व्यक्तिको छोड़कर जातिपर आ पड़ा। नवद्वीपकी माने पुरुषोंके प्रेमकी मुसलमानोंके मुरगी-वात्सल्यसे तुलना की। नवद्वीपके बापने कहा—"स्त्रियोंके मुँहपर शहद रहता है, हृदयमें छुरी !"

किन्तु यह बतलाना मुश्किल है कि इस मौखिक मिठासका स्वाद नवद्वीपके बापको कब मिला ?

इसी बीचमें रामलालको अचानक अदालतसे एक गवाहीका सफीना मिला। बेचारेके हाथ-पाँव ढीले पड़ गये। रामलाल सफीना पढ़कर उसका मतलब समझनेकी कोशिश कर रहे थे ; इतनेमें नवद्वीपकी माने आकर रोना शुरू कर दिया। कहने लगी—"कलमुँही डाँकिन मेरे लालको सिर्फ ताऊकी जयदादसे कोरा रखना चाहती हो सो नहीं, वह तो उसे जेल भिजवानेकी तैयारी कर रही है।"

शुरूसे अन्त तक धीरे-धीरे सब बातें समझकर रामलाल दंग रह गये। झुँझलाकर जोरसे बोल उठे—"अरे, तुम लोगोंने यह क्या सत्यानाश कर डाला !" मालिकिनने भी क्रमशः अपना स्वरूप प्रकट किया ; बोलीं—"क्यों, इसमें नवद्वीपका क्या दोष हो गया ? वह अपने ताऊकी जायदाद न ले ? यों ही छोड़ दे ?"

एक बाहरकी लड़की, पतिकी आयु हड़पनेवाली, डायन आकर घरकी मालिकिन बन बैठे और घरका लड़का चुपचाप उसे देखता रहे? कौन ऐसा सत्कुलप्रदीप कनकचन्द्र वंशधर होगा जो ऐसा अनाचार सह लेगा? मान लो, मरते समय और डाँकिनके मन्त्र फूँकते रहनेसे अगर किसी मूढ़मति ताऊकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, तो क्या बुद्धिमान भतीजा उसे अपने हाथसे नहीं सुधार लेता? इसमें कौनसा अन्याय हुआ!

हतबुद्धि रामलालने जब देखा कि उनकी स्त्री-और पुत्र दोनों मिलकर कभी तर्जन-गर्जन और कभी आश्रु-विसर्जन करने लगे, तब वे तकदीर ठोंककर चुपचाप बैठ गये; अन्न-जल तक छोड़ दिया।

इस तरह दो दिन चुपचाप बिना कुछ खाये-पीये बीत गये। मुकदमेका दिन आया। इस बीचमें नवद्वीपने वरदासुन्दरीके ममेरे भाईको डर दिखाकर ऐसा वशमें कर लिया कि उसने बड़ी आसानीसे नवद्वीपकी तरफ गवाही दी। जयश्री जब वरदासुन्दरीको त्यागकर दूसरी ओर जानेकी तैयारी कर रही थी तब रामलालकी पुकार हुई।

दो दिनसे खाना-पीना छोड़ देनेसे वृद्ध रामलालकी बड़ी बुरी हालत थी; ओठ सूख गये थे, जबान सूखकर तालूसे लग गई थी। अधमरे वृद्ध रामलालने अपनी काँपती हुई शिथिल उंगलियोंसे गवाहके कठघरेको जोरसे दाबकर पकड़ लिया। चतुर बैरिस्टर बड़े कौशलसे पेटकी बात निकालनेके लिए जिरह करने लगे, यानी बहुत दूरसे शुरू करके बड़ी सावधानी

और अत्यन्त धीर वक्रगतिसे प्रसंगके पास पहुंचनेकी कोशिश करने लगे।

तब रामलालने जजकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—"हजूर, मैं बूढ़ा आदमी हूं, बहुत कमजोर हूं, ज्यादा बोलनेका दम नहीं मुझमें, मुझे जो कहना है संक्षेपमें कहे देता हूं। मेरे भाई साहब स्वर्गीय गुरुचरण चक्रवर्ती मरते समय अपनी सारी जायदाद अपनी धर्मपत्नी श्रीमती वरदासुन्दरीको दे गये हैं। वसीयतनामा मैंने अपने हाथसे लिखा था और भाई साहबने उसपर दस्तखत किये थे। मेरे पुत्र नवद्वीपने जो वसीयतनामा दिखाया है वह झूठा है।" इतना कहकर रामलाल कांपने लगे और तुरत ही मूर्छित हो गये।

चतुर बैरिस्टरने बड़ी शेखीसे बगलमें बैठे हुए अटर्नीसे कहा—"बाइ जोव! देखा, जिरहमें ऐसा कसकर फांसा कि कबूल करते ही बना!"

ममेरा भाई जीजीके पास दौड़ा गया, बोला—"बुड्ढेने तो सब मट्टी ही कर दिया था, मेरी गवाहीसे मुकदमा सम्हल गया।"

जीजीने कहा—"अच्छा! आदमीको कौन पहचान सकता है! मैं तो बुड्ढेको भला-आदमी जानती थी।"

जेल गये हुए नवद्वीपके बुद्धिमान मित्रोंने खूब विचारकर निश्चय किया कि 'बुड्ढेने जरूर डरकर ऐसी गवाही दे डाली है; कठघरेपर जाकर बुड्ढा बुद्धिको ठीक नहीं रख सका। ऐसा ठोस बेवकूफ सारे शहरमें ढूढ़े न मिलेगा!'

घर लौटते लौटते रामलालको जोरोंका सन्निपात हो गया।

और, दो-चार दिन बाद पुत्रका नाम लेते-लेते बेचारा निर्बोध सर्वकार्य-विध्वंसकारी नवद्वीपका अनावश्यक बाप इस संसारसे सदाके लिए विदा हो गया। घरवालोंमेंसे किसी-किसीने कहा—"और-कुछ दिन पहले चला जाता तो अच्छा था।"

जिस-जिसने यह बात कही थी, उनका मैं यहाँ नाम लेना नहीं चाहता।

समाप्ति

१

अपूर्वकुमार बी० ए० पास करके छुट्टियोंमें कलकत्तासे अपने गाँवको लौट रहा था।

छोटी-सी नदी है। वर्षाके अन्तमें अकसर सूख-सी जाया करती है। अभी सावनका महीना है, नदी खूब चढ़ी हुई है; गाँवकी सीमा और बाँसकी झाड़ियोंकी जड़को चूमती हुई तेजीसे बहती चली जा रही है।

लगातार कई दिनोंकी घनघोर वर्षाके बाद आज जरा बादल छँटे हैं और आकाशमें धूप दिखाई दे रही है।

नावपर बैठे हुए अपूर्वकुमारके मनके भीतरकी वह तसवीर अगर दिखाई देती, तो देखते कि वहाँ भी इस युवककी मानस-नदी नववर्षासे बिलकुल किनारे तक लबालब भर गई है; और नदीका पानी प्रकाशसे झिलमिल-झिलमिल और हवासे छपछप-छपछप कर रहा है।

नाव यथासमय घाटपर आ लगी। नदीके किनारेसे पेड़ोंकी ओटमेंसे अपूर्वके घरकी छत दिखाई दे रही है। घरपर किसीको मालूम तक नहीं कि अपूर्व आ रहा है, इसलिए घाटपर उसे लेनेके लिए कोई आदमी नहीं आया। मल्लाह बैग उठानेके लिए उद्यत हुआ तो अपूर्वने उसे मना कर दिया; वह खुद ही बैग हाथमें लटकाकर आनन्दकी उमंगमें झटपट नावसे उतर पड़ा।

उतरते ही, किनारेमें थी फिसलन, बैग-समेत वह कीचड़में गिर पड़ा। ज्यों ही वह गिरा, त्यों ही न-जाने कहाँसे एक मीठे ऊँचे कंठकी तरल हास्य-लहरीने आकर बगलके पीपलपर बैठी हुई चिड़ियोंको चकित कर दिया।

अपूर्व बहुत ही शरमिन्दा हुआ; और झटपट अपनेको सम्हालकर चारों तरफ देखने लगा। देखा कि किनारेपर जहाँ महाजनकी नावसे नई ईंटें उतारकर इकट्ठी की गई हैं, उन्हींपर बैठी हुई एक लड़की हँसते-हँसते बिखरी जा रही है।

अपूर्वने पहचान लिया कि वह उन्हींकी नई पड़ोसिनकी लड़की मृण्मयी है। पहले इन लोगोंका घर यहाँसे बहुत दूर बड़ी नदीके किनारेपर था। दो-तीन वर्ष हुए, नदीकी बाढ़के कारण उन्हें गाँव छोड़कर यहाँ चला आना पड़ा है।

इस लड़कीके बारेमें बहुत निन्दा सुननेमें आती है। गाँवके पुरुष तो इसे स्नेहके मारे 'पगली' कहा करते हैं; लेकिन गृहिणियाँ इसके उच्छृङ्खल स्वभावसे सर्वदा भयभीत, चिन्तित और शंकित रहा करती हैं। गाँवके लड़कों ही के साथ उसका खेल होता है; बराबरकी लड़कियोंके प्रति उसकी अवज्ञाकी हद नहीं। बच्चोंके

राज्यमें यह लड़की एक तरहसे शत्रुपक्षकी फौजके उपद्रवके समान जान पड़ती है।

बापकी लाड़ली लड़की ठहरी, और इसीलिए वह इतनी निडर है। यद्यपि इस विषयमें मृण्मयीकी मा अपनी सखी-सहेलियोंके आगे हरवक्त अपने पतिके खिलाफ फरियाद किया ही करतीं, मगर फिर भी यह सोचकर कि बाप लड़कीको लाड़ करते हैं और जब वे घर रहते हैं तो मृण्मयीकी आँखोंके आँसू उनके हृदयमें बहुत ही व्यथा पहुंचाते हैं, वे प्रवासी पतिकी याद करके लड़कीको किसी भी तरह रुला नहीं सकती थीं।

मृण्मयी देखनेमें साँवली है। छोटे-छोटे घुंघराले बाल पीठ तक बिखरे रहते हैं। चेहरेपर बिलकुल बालकका-सा भाव है। बड़ी-बड़ी काली आँखोंमें न तो शरम है, न डर, और न हाव-भावका कोई लेश। शरीर लम्बा, परिपुष्ट, स्वस्थ और सबल। उसकी उमर ज्यादा है या कम, यह सवाल किसीके मनमें उठता ही नहीं। अगर उठता तो लोग इस बातपर मा-बापकी निन्दा करते कि अभी तक वह कुँआरी ही फिर रही है। जब कभी गाँवके विदेशी जमींदारकी नाव आकर घाटपर लगती है, तो उस दिन गाँवके लोग उनकी आव-भगत करनेकी तैयारीमें घबरा-से जाते हैं, घरकी स्त्रियोंकी मुख-रंगभूमिपर अकस्मात् नाकके नीचे तक यवनिका पड़ जाती है ; परन्तु मृण्मयी न-जाने कहाँसे किसीके नंग-धड़ंग बच्चेको गोदमें लिये घुँघराले बाल पीठपर बखेरे आ खड़ी होती है। जिस देशमें कोई शिकारी नहीं, कोई विपत्ति नहीं, उस देशके हरिणके बच्चेकी तरह निर्भीक खड़ी हुई कुतूहलसे

टकटकी लगाये देखा करती ; और अन्तमें बालक-संगियोंके पास जाकर इस नये आये हुए प्राणीके आचार-व्यवहारके विषयमें विस्तारके साथ वर्णन करती।

हमारे अपूर्वकुमारने छुट्टीके दिनोंमें घर आकर इससे पहले और भी दो-चार बार इस बन्धनहीन बालिकाको देखा है ; और फुरसतके वक्त, यहाँ तक कि कामके वक्त भी, इसके विषयमें विचार किया है। पृथ्वीपर बहुतसे चेहरे देखनेमें आते हैं ; पर कोई-कोई चेहरा ऐसा होता है कि न कुछ कहना न सुनना, चटसे मनके भीतर जाकर ऐसा पैठ जाता है कि उसे निकालना मुश्किल हो जाता है। सिर्फ सौन्दर्यके कारण ही ऐसा होता हो सो बात नहीं, वह तो कुछ और ही गुण है, और शायद वह है स्वच्छता। अधिकांश चेहरोंपर मनुष्य-प्रकृति पूरी तौरसे अपना प्रकाश नहीं डाल पाती ; जिस चेहरेपर हृदयके एक कोनेमें वह रहस्यमय व्यक्ति बिना बाधाके बाहर निकलकर दिखाई देता है, वह चेहरा हजारोंमें छिपता नहीं, पल-भरमें मानस पटपर अंकित हो जाता है। इस बालिकाके चेहरेपर आँखोंपर एक चंचल और ढीठ नारी-प्रकृति हमेशा मुक्त और जंगलके दौड़ते हुए मृगकी तरह दिखाई देती रहती है, खेलती-फिरती है ; और इसीलिए ऐसे सजीव चंचल चेहरेको एक बार देख लेनेपर फिर सहजमें वह भुलाये नहीं भूलता।

पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं कि मृण्मयीकी सकौतुक हास्यध्वनि चाहे कितनी ही मीठी क्यों न हो, किन्तु अभागे अपूर्वके लिए वह जरा-कुछ तकलीफदेह ही साबित हुई।

मारे शर्मके उसका चेहरा सुर्ख हो उठा; और हाथका बैग चटसे मल्लाहके हाथमें सौंपकर वह तेजीसे अपने घरकी तरफ चल दिया।

प्रकृतिकी तैयारियाँ भी बहुत सुन्दर थीं। नदीका किनारा, पेड़ोंकी छाया, चिड़ियोंका मधु-गान, प्रभातकी मीठी-मीठी धूप, और बीस सालकी उमर। अलबत्ता, ईंटोंका ढेर ऐसा-कुछ खास उल्लेख-योग्य नहीं, पर उसपर जो मानव-सन्तान बैठी थी उसने उस रूखे-सूखे कठोर आसनपर भी एक तरहका खास मनोरम सौन्दर्यका भाव फैला रखा था। हाय हाय, ऐसे दृश्यके दरमियान पहला कदम रखते ही जिसका साराका सारा कवित्व प्रहसनमें परिणत हो जाय उसके भाग्यकी इससे बढ़कर निष्ठुरता और क्या हो सकती है?

२

ईंटोंके ढेरके ऊपरसे बहती हुई हँसीकी लहर सुनते-सुनते पेड़ोंकी छायाके नीचेसे कीचसे सना दुपट्टा और बैग लिये-हुए श्रीयुत अपूर्वजी किसी कदर अपने घर जा पहुंचे।

अचानक बेटेके आ जानेसे विधवा मा मारे खुशीके फूली न समाई। उसी वक्त खोआ-दही-दूध और मछलीकी खोजमें दूर-नजदीक सब जगह आदमी दौड़ाये गये; और पास-पड़ोसमें भी एक तरहकी हलचल पैदा हो गई।

खा-पी चुकनेके बाद माने बेटेके आगे ब्याहका प्रस्ताव छेड़ा। अपूर्व इसके लिए तैयार था। कारण, प्रस्ताव बहुत पहलेसे ही पेश था, सिर्फ बेटा जरा-कुछ नई रोशनीके चक्करमें आकर जिद

कर बैठा था कि 'बी० ए० पास बगैर किये ब्याह हरगिज नहीं कर सकता' इत्यादि। अब तक जननी उस 'पास'की ही प्रतीक्षामें थीं; लिहाजा अब किसी तरहकी आपत्ति करनेके मानी ही हैं झूठी बहानेबाजी। अपूर्वने कहा—"पहले लड़की तो देखो, फिर देखा जायगा।"

माने कहा—"लड़की देखी जा चुकी, उसके लिए तुझे फिकर करनेकी जरूरत नहीं।"

लेकिन अपूर्व उसके लिए खुद ही फिकर करनेको तैयार हो गया; और बोला—"लड़की बिना देखे तो मैं ब्याह नहीं कर सकता।" मा सोचने लगीं, ऐसी अनोखी बात तो आज तक नहीं सुनी! किन्तु फिर भी राजी हो गईं।

रातको, अपूर्व दिआ बुझाकर बिस्तरपर जा पड़ा। पड़ते ही, वर्षा-निशीथकी सारी-की-सारी आवाज और सम्पूर्ण निस्तब्धताके उस पारसे उसकी विनिद्र शय्यापर एक उच्छ्वसित उच्च मधुर कण्ठकी हास्य-ध्वनि आ-आकर लगातार उसके कानोंमें बजने लगी। उसका मन अपनेको बार-बार लगातार यह कह कहकर पीड़ा देने लग गया कि सवेरे वह जो पैर फिसलकर गिर पड़ा था उसका किसी-न-किसी तरकीबसे उसे सुधार कर ही लेना चाहिए। उस लड़कीका यह मालूम ही नहीं कि 'मैं अपूर्व कुमार हूं, बहुत ज्यादा पढ़ा-लिखा हूं, बहुत दिन कलकत्ता रहा हूं, अचानक फिसलनपर पाँव पड़ जानेस कीचमें गिर जानेपर भी मैं कोई उपहास्य या उपेक्षणीय गँवार युवक नहीं हूं।'

दूसरे दिन अपूर्वको लड़की देखने जाना था। ज्यादा दूर

नहीं, मुहल्लेमें ही लड़कीवालोंका घर है। जरा-कुछ जतनके साथ ही कपड़े पहने। धोती और दुपट्टा छोड़कर रेशमी अचकन, माथेपर अमीरी ढंगकी गोल पगड़ी और पाँवोंमें बार्निशदार चमकते हुए जूते पहनकर, रेशमी कपड़ेकी बढ़िया छतरी हाथमें लटकाये, सवेरे ही चल दिया।

होनेवाली सुसरालमें पदार्पण करते ही वहाँ समारोह-समादरकी धूम मच गई। अन्तमें, यथासमय कम्पित-हृदय लड़कीको झाड़-पोंछकर रंग-रंगूकर जूड़ेमें गोटा वगैरह लगाकर, एक पतली रंगीन साड़ीमें लपेटकर, उसे भावी वरके सामने लाया गया। लड़की एक कोनेमें लगभग घुटनेके पास तक माथा झुकाये चुपचाप जड़-वस्तु-सी बैठी रही; और उसके पीछे हिम्मत बँधाये रखनेके लिए खड़ी रही एक अधेड़ उमरकी दासी। लड़कीका एक भाई, जो कि अभी बच्चा ही था, अपने परिवारमें अनधिकार प्रवेश करनेवाले इस नये आदमीकी पगड़ी, घड़ीकी चेन और उठती हुई मूँछोंकी तरफ बड़े ध्यानसे टकटकी बाँधे देखने लगा। अपूर्वने कुछ देर मूँछोंपर हाथ फेरनेके बाद अन्तमें गम्भीरताके साथ पूछा—"तुम पढ़ती क्या हो?"

गहनों-कपड़ोंसे लदी हुई लज्जाकी गठरीमेंसे उसे अपने सवालका कोई भी जवाब नहीं मिला। दो-चार बार पूछे जाने और पुरानी दासी द्वारा पीठपर बार-बार उत्साहप्रद थपकियाँ पड़नेके बाद लड़कीने बहुत ही धीमी आवाजमें जल्दी-जल्दी एक ही साँसमें कहकर छुट्टी पा ली—"कन्या-बोधिनी दूसरा भाग, व्याकरण-सार, भूगोल, अंक-गणित, भारतका इतिहास।"

इतनेमें बाहर किसीकी तेज चालकी 'धम-धम' आवाज सुनाई दी; और दूसरे ही क्षण दौड़ती-हाँफती और पीठपरके बालोंको हिलाती हुई मृण्मयी वहाँ आ धमकी। उसने अपूर्वकी तरफ आँख उठाकर देखा तक नहीं; सीधी उस होनेवाली दुलहिनके छोटे भाई राखालके पास पहुंची और उसका हाथ पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। राखाल उस समय भावी दूल्हा-दुलहिनको देखनेमें गरक था; वहाँसे वह किसी भी तरह टससे मस न हुआ। नौकरानी अपने संयत कण्ठकी कोमलताकी भरसक रक्षा करती हुई यथासाध्य तीव्रताके साथ मृण्मयीको फटकारने लगी। अपूर्व अपनी सारी-की-सारी गंभीरता और गौरवको इकट्ठा करके पगड़ी-शुदा माथेको ऊंचा करके बैठा रहा और पेटके पास लटकती हुई अपनी घड़ीकी चेनको हिलाने लगा।

आखिरकार, मृण्मयीने जब देखा कि उसका साथी किसी भी तरह विचलित नहीं हो रहा तब उसने उसकी पीठपर एक जोरका मुक्का जमा दिया; और लगे-हाथ भावी दुलहिनके माथेका घूँघट उघाड़कर वह आँधीकी तरह, जिस रफ्तारसे आई थी उसी रफ्तारसे, भाग खड़ी हुई। नौकरानी जी मसोसकर रह गई; और भीतर-ही-भीतर घुमड़-घुमड़के गरजने लगी। और राखाल अचानक बहनका घूँघट खुल जानेसे एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ा। इस आनन्दमें अपनी पीठपर पड़े हुए मुक्केको भी उसने बेजा नहीं समझा। कारण, ऐसा देन-लेन उनमें अकसर हुआ ही करता है; कोई खास बात नहीं थी। इसके लिए एक दृष्टान्त

काफी है : एक दिनकी बात है, मृण्मयीके बाल तब पीठ तक बढ़े हुए थे; राखालने अचानक पीछेसे आकर कैंचीसे उसके बाल कतर दिये; इसपर मृण्मयीको बहुत जोरका गुस्सा आया और उसने चटसे राखालके हाथसे कैंची छीनकर अपने बाकी बचे हुए बाल भी बड़ी निर्दयतासे कतर-कतरकर उसके मुंहपर दे मारे। मृण्मयीके घुंघराले बालोंके गुच्छे डालीसे गिरे हुए काले अंगूरके गुच्छोंकी तरह जमीनपर बिखर गये। इन दोनोंमें शुरूसे ही इसी तरहकी शासन-प्रणाली प्रचलित थी।

इसके बाद फिर वह नीरव परीक्षा-सभा ज्यादा देर तक न टिक सकी। गठरी-सी बनी लड़की बड़ी मुश्किलसे अपनेको लम्बी बनाकर दासीके साथ घरके भीतर चली गई। अपूर्व परम गम्भीरताके साथ अपनी उठती हुई मूँछोंपर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ। दरवाजेके पास जाकर देखा कि उसके बार्निशदार नये जूते वहाँसे गायब हैं! बहुत कोशिश करनेपर भी इस बातका कतई पता न चला कि जूते कौन ले गया, कहाँ गये!

घरवाले सभी-कोई बड़े परेशान हुए; और अपराधीके नामपर लगातार निन्दा और गालियोंकी वर्षा होने लगी। बहुत ढूंढ़नेपर भी जब जूतोंका कुछ पता न लगा, तो अन्तमें मजबूर होकर घर-मालिककी फटी-पुरानी ढीली चट्टी पहनकर पतलून चपकन पगड़ी आदिसे सुसज्जित अपूर्व गाँवके कीचड़-भरे रास्तेसे अत्यन्त सावधानीके साथ घरकी ओर चल दिया।

तालाबके किनारे सुनसान रास्तेपर पहुंचते ही सहसा फिर उसे वही जोरकी हँसी सुनाई दी। मानो पेड़-पत्तोंकी ओटमेंसे

कौतुकप्रिया वनदेवी ही अपूर्वकी उन बेमेल जूतियोंको देखकर एकाएक हँस पड़ी हो।

अपूर्व अत्यन्त लज्जित होकर ठिठक गया; और इधर-उधर निगाह दौड़ाकर देखने लगा। इतनेमें सघन वनमेंसे निकलकर किसी निर्लज्ज अपराधिनीने उसके सामने नये जूते रख दिये; और चटसे भाग जानेको तैयार हुई कि अपूर्वने जल्दीसे उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे कैद कर लिया।

मृण्मयीने यथासाध्य टेढ़ी-सीधी-तिरछी होकर, जोर लगाकर, हाथ छुड़ाकर भागनेकी बहुत कोशिश की; लेकिन व्यर्थ। घुंघराले बालोंसे घिरे-हुए उसके भरे-हुए गोल-मटोल मुस्कराते हुए चंचल चेहरेपर सूरजकी किरणें पेड़की डालियों और पत्तोंमेंसे छन-छनकर पड़ने लगीं। कुतूहली पथिक जिस तरह सूर्य-किरणोंसे चमकती हुई निर्मल चंचल निर्झरिणीकी ओर झुककर टकटकी लगाये उसकी तलीको देखता रहता है, ठीक उसी तरह अपूर्वने मृण्मयीके ऊपर उठे-हुए चेहरेपर झुककर, उसकी बिजली-सी चंचल आँखोंके भीतर गहरी निगाह गाड़कर देखा; और फिर बहुत ही आहिस्तेसे मुट्ठी ढीली करके मानो अपने कर्तव्यको अधूरा छोड़कर बन्दिनीको मुक्त कर दिया। अपूर्व अगर गुस्सेमें आकर मृण्मयीको पकड़कर मारता, तो उसे जरा भी आश्चर्य न होता; किन्तु इस प्रकार सुनसान रास्तेमें इस अद्भुत नीरव दंडका वह कुछ अर्थ ही न समझ सकी।

नाचती हुई प्रकृतिके नूपुरोंकी झनकारकी भाँति फिर वही चंचल हास्य-ध्वनि सम्पूर्ण आकाशमें व्याप्त होकर गूँज उठी;

और चिन्ता-निमग्न अपूर्व बहुत धीरे-धीरे पैर रखता हुआ घरकी ओर चल दिया।

३

अपूर्व उस दिन तरह-तरहके बहाने बनाकर न तो घरके भीतर गया, और न मासे मिला। किसीके यहाँ निमन्त्रण था, वहीं खा आया। अपूर्व सरीखा पढ़ा-लिखा और गम्भीर भावुक युवक एक मामूली बिना पढ़ी-लिखी लड़कीके मुकाबले अपने लुप्त गौरवके उद्धार करने और उसे अपनी आन्तरिक महत्ताका पूर्ण परिचय देनेके लिए क्यों इतना उत्कंठित हो उठा, यह समझना कठिन है। एक गँवई-गाँवकी चंचल लड़कीने उसे मामूली आदमी समझ ही लिया, तो क्या हो गया? और, उसने क्षण-भरके लिए अपूर्वको हास्यास्पद बनाकर और फिर उसके अस्तित्वको भूलकर राखाल नामके किसी निर्बोध लड़केके साथ खेलनेके लिए दिलचस्पी जाहिर की, तो इसमें अपूर्वका बिगड़ ही क्या गया? इन बच्चोंके सामने उसे यह साबित करनेकी जरूरत ही क्या है कि वह 'विश्वदीप' नामक मासिक पत्रमें किताबोंकी समालोचना किया करता है, और उसके बकसके अन्दर एसेन्स, जूते, रुबिनीके कैंफर, चिट्ठी लिखनेके रंगीन कागज और 'हारमोनियम-शिक्षा' किताबके साथ एक पूरी लिखी हुई प्रेस-कॉपी, निशीथके गर्भमें भावी ऊषाकी तरह, प्रकाशित होनेकी प्रतीक्षा कर रही है। पर मनको समझाना कठिन है, कम-से-कम इस देहाती चंचल लड़कीके सामने श्रीअपूर्वकुमार राय बी० ए० पराजय स्वीकार करनेको किसी भी तरह तैयार नहीं हैं।

शामको अपूर्व जब घरके भीतर पहुंचा, तो उसकी माने पूछा—"क्यों रे, लड़की देख आया? कैसी है, पसन्द है न?"

अपूर्वने कुछ झेंपते हुए कहा—"हाँ, देख आया, मा, उनमेंसे एक लड़की मुझे पसन्द है।"

माने आश्चर्यके साथ कहा—"तैंने कितनी लड़की देखी थीं वहाँ?"

अन्तमें, दो-चार प्रश्नोत्तरके बाद माको मालूम हुआ कि उनके लड़केने पड़ोसिन शारदाकी लड़की मृण्मयीको पसन्द किया है। इतना पढ़-लिखकर भी लड़केकी यह पसन्द!

पहले तो अपूर्व कुछ शरमाता रहा; फिर अन्तमें मा जब उसकी पसन्दका विरोध करने लगीं, तो उसकी वह शर्म जाती रही। यहाँ तक कि जिदमें आकर वह कह बैठा—'मृण्मयीके सिवा मैं और किसीसे ब्याह करूंगा ही नहीं।" और ज्यों-ज्यों वह उसके सामने लाई-गई उस जड़-पुतली जैसी लड़कीकी कल्पना करने लगा त्यों-त्यों ब्याहके बारेमें उसकी अरुचि बढ़ती ही गई।

दो-तीन दिन तक मा और बेटेमें नाराजीका भाव रहा, माने खाना पीना सोना तक बन्द कर दिया; किन्तु अन्तमें अपूर्वकी ही जीत हुई। माने अपने मनको समझाया कि मृण्मयी अभी बच्ची ही है और उसकी मा उसे पढ़ानेमें असमर्थ है,—ब्याहके बाद अपने घर आ जानेपर वे उसे ठीक कर लेंगीं। और धीरे-धीरे उन्हें इस बातपर भी भरोसा होने लगा कि उसका चेहरा सुन्दर है, किन्तु उसी समय उसके भद्दे बालोंकी कल्पना करते ही उनका मन निराशासे भर गया; फिर भी उन्होंने आशा की कि

ठीकसे जूड़ा बाँधते रहने और खूब तेल डालते रहनेसे यह खामी भी कुछ दिनोंमें जाती रहेगी।

मुहल्लेके सभी लोग अपूर्वकी इस पसन्दको 'अपूर्व पसन्द' कहने लगे। पगली मृण्मयीको प्यार तो बहुतसे लोग किया करते थे, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उसे वे अपने लड़केके साथ ब्याहने-योग्य समझते हों।

मृण्मयीके बाप ईशानचन्द्र मजूमदारको यथासमय खबर दे दी गई। वह किसी स्टीमर-कम्पनीकी तरफसे बतौर क्लार्कके नदीके किनारे एक छोटेसे स्टेशनपर टीनसे छई-हुई छोटी-सी झोंपड़ीमें माल उतरवाने-लदवाने और टिकट बेचनेका काम करते थे। देशसे अपनी लड़कीके मृण्मयीके सम्बन्ध और ब्याहका समाचार पाकर उनकी दोनों आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उनमें कितना दुःख और कितना आनन्द था, इस बातका अन्दाजा लगाना कठिन है।

अपनी लड़कीके ब्याहमें जानेके लिए ईशानचन्द्रने हेड-आफिसके साहबको छुट्टीके लिए दरखास्त दी। साहबने उसे बहुत ही तुच्छ काम समझकर छुट्टी नामंजूर कर दी। तब, उन्होंने घरको लिख दिया कि दशहरेके मौकेपर एक हफ्तेकी छुट्टी मिलेगी, तब तकके लिए ब्याह स्थगित रखा जाय। पर अपूर्वकी माने लिखा कि "इस महीनेका मुहूर्त बहुत ही अच्छा है, अब आगे दिन नहीं हटाया जा सकता।'

दोनों जगहसे प्रार्थना नामंजूर हो जानेपर व्यथित-हृदय बापने फिर कोई आपत्ति नहीं की; पहलेकी तरह ही वह माल वजन करने और टिकट बेचनेके काममें लग गया।

इसके बाद, मृण्मयीकी मा और गाँवके जितने भी बड़े-बूढ़े थे, सब-कोई मिलकर मृण्मयीको उसके भावी कर्तव्यके विषयमें दिन-रात उपदेश देने लगे। खेल-कूद, भाग-दौड़, जल्दी-जल्दी चलना, जोर-जोरसे हँसना, लड़कोंके साथ हिलना-मिलना, फालतू बातें करना और भूख लगते ही खानेको माँग बैठना इत्यादि विषयोंपर मनाहीकी सलाह दे-देकर सबोंने ब्याहको उसके सामने एक भूत बनाकर खड़ा कर दिया। उत्कंठित और शंकित-हृदय मृण्मयीने समझा कि उसे जिन्दगी भरके लिए कैद और उसके बाद फाँसीकी सजा दी जा रही है।

नतीजा यह हुआ कि कमबख्त अड़ियल टट्टूकी तरह गरदन टेढ़ी करके पीछेको हटकर कह बैठी—"मैं ब्याह नहीं करूँगी, जाओ!"

४

मगर फिर भी उसे ब्याह करना ही पड़ा।

उसके बाद शिक्षा शुरू हुई। अपूर्वकी माके घर आकर एक ही रातमें मृण्मयीकी अपनी सारी दुनिया कैदमें घिर गई।

सासने बहूका सुधार करना शुरू कर दिया। बहुत ही कठोर मुंह बनाकर बहूसे कहा—"देखो बेटी, तुम अब नन्ही बच्ची नहीं रहीं,-हमारे घरमें ऐसी बेहयाई नहीं चलेगी।"

सासने यह बात जिस भावसे कही, मृण्मयी उसे ठीक उस रूपमें न ले सकी। उसने सोचा कि इस घरमें अगर न चले, तो शायद कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा। दोपहरको वह घरमें

नहीं दिखाई दी। 'कहाँ गई, कहाँ गई?'–ढुंढ़ेरा पड़ गया। अन्तमें विश्वासघातक राखालने उसके गुप्त स्थानका पता बताकर उसे पकड़वा दिया। वह बड़के नीचे श्रीराधाकान्तजीके टूटे हुए रथमें जाकर छिप गई थी।

सासने, माने और पास-पड़ोसकी सब-की-सब हितैषिणियोंने उसे कितना डाटा-फटकारा और लज्जित किया, इसकी कल्पना खुद पाठक-पाठिकाएँ कर लें तो अच्छा हो।

रातको खूब बादल घिर आये; और रिमझिम-रिमझिम मेह बरसने लगा। अपूर्वने बहुत धीरे-धीरे मृण्मयीके पास पलंगपर जाकर उसके कानमें धीरेसे कहा—"मृण्मयी, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं?"

मृण्मयी यकायक कड़ककर बोल उठी—"नहीं। मैं तुम्हें हरगिज नहीं प्यार करूंगी।" मानो उसने अपना सारा गुस्सा और सबके कसूरकी सारी सजा, सबको इकट्ठा करके, बिजलीकी तरह अपूर्वके माथेपर दे मारी।

अपूर्वने दुःखी होकर कहा—"क्यों, मैंने तुम्हारा क्या कसूर किया है?"

इस कसूरकी सन्तोषजनक कैफियत देना मुश्किल है। अपूर्वने मन-ही-मन कहा, 'इस विद्रोही मनको जैसे भी बने वशमें करना ही होगा।'

दूसरे दिन सासने मृण्मयीमें विद्रोही-भावके सब लक्षण देखकर उसे कोठेमें बन्द कर दिया। पिंजड़ेमें फँसी हुई नई चिड़ियाकी तरह पहले तो वह बहुत देर तक कोठेके अन्दर

फड़फड़ाती रही ; बादमें जब कहीं भी भागनेका कोई रास्ता न मिला, तो निष्फल क्रोधसे उसने बिछौनेकी चादरको दाँतोंसे चीथ-चीथकर उसके झन्ने उड़ा दिये, और जमीनपर औंधी पड़कर मन-ही-मन बापकी याद करके रोने लगी।

ठीक इसी समय धीरेसे कोई उसके पास आकर बैठ गया। बड़े स्नेहसे उसके धूलमें लोटते हुए बालोंको गालोंपरसे एक ओर हटा देनेकी कोशिश करने लगा। मृण्मयीने बड़े जोरसे अपना सिर हिलाकर उसका हाथ हटा दिया। अपूर्वने उसके कानोंके पास अपना मुंह ले जाकर बहुत ही कोमल स्वरसे कहा—"मैंने चुपकेसे दरवाजा खोल दिया है। आओ, हम दोनों पीछेके बगीचेमें भाग जायँ।"

मृण्मयीने जोरसे सिर हिलाकर रोते हुए कहा—"नहीं।"

अपूर्वने ठोड़ी पकड़कर उसका मुंह ऊपरको उठाना चाहा ; और कहा—"एक बार देखो तो सही, कौन आया है! राखाल जमीनपर पड़ी हुई मृण्मयीकी ओर देखता हुआ हतबुद्धिकी तरह दरवाजेके पास खड़ा था। मृण्मयीने बिना मुँह उठाये ही अपूर्वका हाथ झटककर अलग कर दिया।

अपूर्वने कहा—"देखो, राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है, खेलने नहीं जाओगी?"

उसने गुस्से-भरे स्वरमें कहा—"नहीं।"

राखालने भी देखा कि मामला गड़बड़ है। वह किसी तरह घरसे बाहर निकलकर जान बचाकर भाग गया। अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। जब मृण्मयी रोते-रोते थककर सो गई तब वह

चुपकेसे उठा और बाहरसे दरवाजेकी साँकल चढ़ाकर दबे-पाँव वहाँसे चल दिया।

इसके दूसरे दिन मृण्मयीको पिताकी एक चिट्ठी मिली। उसमें उन्होंने अपनी प्राणोंसे प्यारी बेटी मृण्मयीके ब्याहमें न आ सकनेके कारण विलाप करके अन्तमें नव-दम्पत्तिको आन्तरिक आशीर्वाद दिया था।

मृण्मयीने सासके पास जाकर कहा—"मैं बापूजीके पास जाऊँगी।"

सासने अकस्मात् बहूकी इस असम्भव प्रार्थनाको सुनकर उसे डाट दिया—"बापका कहीं कुछ ठीक-ठिकाना भी है कि ऐसे ही बापूजीके पास जायेगी! तेरा तो एक दुनियासे न्यारा ही स्वाँग है! ऐसा लाड़ मुझे नहीं अच्छा लगता।"

बहूने कुछ जवाब नहीं दिया। अपने कमरेमें जाकर उसने भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये; और बिलकुल हताश आदमी जिस तरह देवतासे प्रार्थना करता है उसी तरह वह कहने लगी, 'बापूजी, मुझे तुम ले जाओ यहाँसे। यहाँ मेरा कोई नहीं है। यहाँ मैं नहीं बचूँगी।'

बहुत रात बीत जानेपर, जब उसके पति सो गये तब, वह चुपकेसे दरवाजा खोलकर बाहर चल दी। यद्यपि बीच-बीचमें बादल घिर-घिर आते थे, फिर भी चाँदनी रातमें रास्ता दिखाई देने लायक उजाला काफी था। 'बापूजी'के पास जानेके लिए किस रास्तेसे जाना चाहिए, मृण्मयीको कुछ भी पता न था। उसे तो सिर्फ इतना ही भरोसा था कि जिस रास्तेसे डाक ले जानेवाले

डाकिया लोग जाया करते हैं उसी रास्तेसे दुनियाके किसी भी ठिकानेपर पहुंचा जा सकता है। मृण्मयी उसी डाककी सड़कसे चलती चली गई। चलते-चलते शरीर थक गया, रात भी लगभग खतम हो चली। जंगलमें, जब कि दो-एक पक्षी पंख फड़फड़ा कर अनिश्चित स्वरमें बोलना चाहते थे और साथ ही समयका निःसन्देह निर्णय न कर सकनेके कारण दुविधामें चुप रह जाते थे, उस समय मृण्मयी सड़कके छोरमें नदीके किनारे एक 'बाजार' सरीखे स्थानपर जा पहुंची। इसके बाद, वह सोच ही रही थी कि अब किस ओर जाना चाहिए, इतनेमें उसे परिचित 'झम-झम' शब्द सुनाई दिया। थोड़ी देरमें कंधेपर चिट्ठियोंका थैला लटकाये हाँफता हुआ डाकका 'रनर' आ पहुंचा। मृण्मयी जल्दीसे उसके पास जाकर करुण और थके हुए स्वरमें बोली—"कुशीगंज, मैं अपने बापूके पास जाऊँगी, तुम मुझे साथ ले चलो न ?"

उसने कहा—"कुशीगंज कहाँ है, मुझे नहीं मालूम।" इतना-सा जवाब देकर वह घाटपर पहुंचा ; और घाटपर बँधी हुई डाककी नावमें बैठकर मल्लाहको जगाकर नाव खुलवा दी। उस समय उसे किसीपर दया दिखाने या पूछताछ करनेकी फुरसत न थी।

देखते-देखते घाट और बाजार सजग हो उठे। मृण्मयीने घाटपर जाकर एक मल्लाहसे कहा—"मुझे कुशीगंज ले जाओगे ?"

मल्लाहके उत्तर देनेके पहले ही बगलकी नावपरसे कोई बोल उठा—"अरे, कौन है यह ? मीनू बेटी, तू यहाँ कैसे आई ?"

मृण्मयी अत्यन्त व्यग्रताके साथ बोल उठी—"वनमाली, मैं बापूके पास कुशीगंज जाऊँगी, तू अपनी नावपर मुझे ले चल।"

वनमाली उसके गाँवका ही मल्लाह था, वह इस उच्छृङ्खल-प्रकृति बालिकाको खूब अच्छी तरह पहचानता था। उसने कहा—"बापूके पास जायगी ? यह तो बड़ी अच्छी बात है ! चल, मैं तुझे पहुंचा दूं।"

मृण्मयी नावपर जा बैठी।

मल्लाहने नाव छोड़ दी। बादल घिर आये और मूसलधार वर्षा होने लगी। सावन-भादोंकी तरह भरपूर चढ़ी-हुई नदी फूल-फूलकर नावको जोरोंसे हिलाने लगी। मृण्मयीका सारा शरीर थकावट और नींदके मारे टूटने-सा लगा, आँखोंमें नींद भर आई, वह आँचल बिछाकर पड़ रही। और पड़तेके साथ ही, वह चञ्चल अशान्त बालिका नदीके इस हिंडोलेमें प्रकृतिके स्नेहसे पले हुए शान्त शिशुकी तरह, बेधड़क सो गई।

आँख खुली, तो देखा कि अपनी ससुरालमें खाटपर पड़ी सो रही है। उसे जगते देखकर महरी बड़बड़ाने लगी। महरीकी आवाज सुनकर सास भी आ पहुंचीं; और कड़ी-कड़ी बातें सुनाने लगीं। मृण्मयी आँखें फाड़-फाड़कर चुपचाप उनके मुँहकी ओर देखती रही। अन्तमें सासने जब उसके बापकी शिक्षापर कटाक्ष करना शुरू किया, तब मृण्मयीने जल्दीसे उठकर बगलकी कोठरीमें घुसकर भीतरसे साँकल लगा ली।

अपूर्वने हया-शरमको ताकपर रखकर मासे आकर कहा—"मा, बहूको दो-चार दिनके लिए एक बार मायके भेज देनेमें कोई हर्ज है ?"

माने अपूर्वको ऐसा फटकारा कि जो 'न भूतो न भविष्यति'।

दुनियामें इतनी लड़कियोंके होते हुए न-जाने कहाँसे छाँट-छाँटके ऐसी हाड़ जलानेवाली डाकू लड़कीको घरमें लानेकी बेहूदगीपर अपूर्वको काफी खरी-खोटी सुननी पड़ी।

५

उस दिन दिन-भर घरके बाहर आँधी-मेह और भीतर आँसुओंकी बारिश होती रही।

दूसरे दिन आधी रातको अपूर्वने मृण्मयीको धीरेसे जाकर कहा—"मृण्मयी, तुम अपने बापूजीके पास जाओगी?"

मृण्मयीने चौंककर जल्दीसे अपूर्वका हाथ मसककर कृतज्ञ कंठसे कहा—"जाऊँगी।"

अपूर्वने चुपकेसे कहा—"तो चलो, हम दोनों चुपचाप भाग चलें। मैंने घाटपर एक नाव ठीक कर रखी है।"

मृण्मयीने अत्यन्त कृतज्ञ दृष्टिसे एक बार पतिके मुँहकी ओर देखा; और उसके बाद झटपट उठकर कपड़े बदलकर चलनेके लिए तैयार हो गई। अपूर्वने माको किसी तरहकी चिन्ता न हो इसलिए एक पत्र लिखकर रख दिया; और दोनों निकल पड़े।

मृण्मयीने उस अँधेरी रातमें गाँवके उस जनशून्य सुनसान निर्जन रास्तेमें यह पहली ही बार, अपने मनसे, सारे हृदय-मनसे पूरे विश्वास और निर्भरताके साथ अपने पतिका हाथ थामा; उसके अपने हृदयका आनन्द-उद्वेग उस सुकोमल स्पर्शसे उसके पतिकी नसोंमें भी संचारित होने लगा।

नाव उसी रातको चल दी। अशान्त हर्षोच्छ्वासके होते हुए भी मृण्मयीको बहुत जल्दी नींद आ गई। दूसरे दिन

कैसी मुक्ति थी, कैसा आनन्द था ! दोनों ओर कितने बाजार, कितने खेत और जङ्गल दिखाई दे रहे हैं, इधर-उधर कितनी नावें जा-आ रही हैं। मृण्मयी छोटी-छोटी बातपर पतिसे हजारों बार सवाल करने लगी। उस नावपर क्या है, वे लोग कहाँसे आ रहे हैं, इस जगहका नाम क्या है, ऐसे-ऐसे सवाल कि जिनका समाधान आज तक उसे कभी किसी कालेजकी किताबमें नहीं मिले और जो उसके कलकत्तेके तजुर्बेके बाहर थे। अपूर्वकी मित्रमंडली यह सुनकर लज्जित होगी कि अपूर्वने इन सब प्रश्नोंका अलग-अलग उत्तर दिया था; और अधिकांश उत्तर ऐसे थे कि जिनका सत्यके साथ कोई मेल नहीं था। मसलन, तिलकी नावको तीसीकी नाव, पाँचबेड़ाको रायनगर और मुन्सिफकी अदालतको जमींदारकी कचहरी बतानेमें उसे जरा भी सङ्कोच न हुआ। और सबसे बढ़कर मजेकी बात यह कि इन सब भ्रमपूर्ण उत्तरोंसे विश्वस्त-हृदय प्रश्नकारिणीके सन्तोषमें तिल-भर भी बाधा न आई।

दूसरे दिन शामको नाव कुशीगञ्ज पहुंची। टीनके झोपड़ेमें एक मैली-कुचैली काँचकी भद्दी लालटेन जलाकर छोटेसे डेक्सपर एक चमड़ेकी जिल्दवाला बड़ा रजिस्टर रखकर, उघड़े-बदन, स्टूलपर बैठे हुए ईशानचन्द्र हिसाब लिख रहे थे। इसी समय इस नव-दम्पतिने झोंपड़ेके भीतर प्रवेश किया। मृण्मयीने पुकारा—"बापूजी !" उस झोंपड़ेमें आज तक ऐसी कण्ठध्वनि इस तरह इससे पहले और कभी भी नहीं सुनाई दी।

ईशानकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। उस समय

वह कुछ निश्चय न कर सका कि उसे क्या करना चाहिए। उसकी लड़की और दामाद मानो साम्राज्यके युवराज और युवराज्ञी हैं; यहाँ इन पटसनकी गाँठोंके बीचमें उनके बैठने लायक सिंहासन किस तरह बनाया जा सकता है, इसी बातका निर्णय करनेमें मानो उसकी भटकती हुई बुद्धि और भी भटक गई।

और खाने-पीनेका इन्तजाम ?—यह भी एक चिन्ताकी बात है। गरीब क्लार्क अपने हाथसे दाल-भात बनाकर किसी तरह पेट भर लेता है। आज, ऐसे आनन्दके दिनमें वह क्या करे, क्या खिलावे ?

मृण्मयी बोली—"बापूजी, आज हम सब मिलके रसोई बनावेंगे।"

अपूर्वने इस प्रस्तावपर अत्यन्त उत्साह प्रकट किया। उस छोटेसे झोंपड़ेमें जगहकी कमी थी, आदमीकी कमी थी, अन्नकी कमी थी; किन्तु छोटेसे छेदमेंसे जिस तरह फुहारा चौगुने वेगसे छूटता है, उसी तरह गरीबीके बारीक सूराखसे आनन्दकी धारा पूरी तेजीसे बहने लगी।

इसी तरह तीन दिन बीत गये। दोनों वक्त नियमित रूपसे स्टीमर आकर जेटीसे लगता है, मुसाफिरोंका आना-जाना और शोरगुल सुनाई देता है। संध्याके समय नदी-तट बिलकुल निर्जन हो जाता है, और तब एक तरहकी अपूर्व अबाध स्वाधीनताका अनुभव होता है। तीनों मिलकर तरह-तरहकी तैयारियाँ करके, गलतियाँ करके, कुछका कुछ और कहींका कहीं करके रसोई बनाते। उसके बाद मृण्मयीके चूड़ियों-शुदा स्नेह-भरे हाथोंसे

परोसा जाना, ससुर-जमाईका एकसाथ बैठकर खाना-पीना और गृहिणीपनकी सैकड़ों त्रुटियाँ दिखलाते हुए मृण्मयीकी हँसी उड़ाया जाना और उसपर बालिकाका आनन्द-कलह और मौखिक अभिमान करना – इन सब बातोंसे सबका चित्त आनन्दसे पुलकित हो उठा।

अन्तमें अपूर्वने कहा कि 'अब ज्यादा दिन रहना ठीक नहीं।' मृण्मयीने करुणस्वरसे और भी कुछ रोज ठहरनेके लिए प्रार्थना की। ईशानने कहा—"नहीं, अब नहीं।"

विदाके दिन लड़कीको छातीसे लगाकर उसके माथेपर हाथ रखकर अश्रु-गद्गद-कण्ठसे ईशानने कहा—"बेटी, तू अपनी सुसरालमें उजाला करना, लक्ष्मी बनकर रहना, – अच्छा, जिससे मेरी मीनूमें कोई कुछ दोष न निकाल सके।"

मृण्मयी रोते-रोते अपने पतिके साथ विदा हो गई; और ईशान अपने दूने निरानन्दमय उसी सङ्कीर्ण झोंपड़ेमें आकर, अपने उसी पुराने नियमके अनुसार माल तौलकर, दिनपर दिन और महीनेपर महीने बिताने लगा।

६

दोनों अपराधियोंकी जुगल-जोड़ी जब घर लौटी, तो मा बहुत गम्भीर बनी रहीं, किसीसे कुछ बात ही नहीं की। माकी तरफसे किसीके व्यवहारपर ऐसा कोई दोषारोप ही नहीं किया गया कि जिसकी सफाईके लिए दोनोंमेंसे कोई कुछ कोशिश करता। इस नीरव अभियोगने, इस निस्तब्ध अभिमानने, पहाड़की तरह सारी घर-गृहस्थीको अटल होकर दाब रखा।

अन्तमें जब असह्य हो उठा, तो अपूर्वने कहा—"मा, कालेज खुल गया है, अब मुझे कानून पढ़ने जाना होगा।"

माने उदासीन भावसे कहा—"बहूका क्या करोगे?"

अपूर्वने कहा—"यहीं रहने दो।"

माने कहा—"ना बेटा, जरूरत नहीं। उसे तुम अपने साथ ही लेते जाओ।"

साधारणतः मा अपूर्वसे 'तू' कहकर ही बोलती हैं।

अपूर्वने अभिमान-व्यथित स्वरमें कहा—"अच्छा।"

कलकत्ता जानेकी तैयारियाँ होने लगीं। जानेके एक दिन पहले, रातको, अपूर्व जब अपने कमरेमें सोने गया, तो देखा कि मृण्मयी बिस्तरपर पड़ी रो रही है।

सहसा उसके हृदयको चोट पहुंची। व्यथित स्वरमें बोला—"मृण्मयी, मेरे साथ कलकत्ता जानेको तुम्हारा जी नहीं चाहता?"

मृण्मयीने कहा—"नहीं।"

अपूर्वने पूछा—"तुम मुझसे प्रेम नहीं करतीं?"

इस प्रश्नका कुछ जवाब न मिला। आम तौरपर इस तरहके सवालका जवाब बहुत ही आसान हुआ करता है, किन्तु कभी-कभी इसके अन्दर मनस्तत्त्वकी इतनी जटिलता भरी रहती है कि बालिकासे ठीक वैसे जवाबकी उम्मीद नहीं की जा सकती।

अपूर्वने सवाल किया—"राखालको छोड़कर यहाँसे जानेमें तुम्हारा जी नहीं चाहता, क्यों?"

मृण्मयीने बड़ी आसानीसे जवाब दे दिया—"हाँ।"

बालक राखालके प्रति इस बी०ए० पास कृतविद्य युवकके

हृदयमें सुईके बराबर बहुत ही बारीक किन्तु अत्यन्त लम्बी ईर्ष्याका उदय हुआ। बोला—"मैं बहुत दिनों तक घर नहीं लौट सकूँगा।" इस संवादके विषयमें मृण्मयीको अपनी तरफसे कुछ नहीं कहना था। अपूर्व फिर बोला—"शायद दो-ढाई साल या उससे भी ज्यादा दिन लग सकते हैं।"

मृण्मयीने आज्ञा दी—"वापस आते वक्त तुम राखालके लिए एक तीन फलवाला राजसका चाकू लेते आना।"

अपूर्व लेटे हुए था; जरा उठकर बोला—"तो तुम यहीं रहोगी ?"

मृण्मयीने कहा—"हाँ, मैं अपनी माके पास जाकर रहूंगी।"

अपूर्वने एक हलकी-सी उसास लेकर कहा—"अच्छी बात है, वहीं रहना। जब तक तुम खुद मुझे आनेके लिए चिट्ठी न लिखोगी तब तक मैं नहीं आऊँगा। अब तो खूब खुश हुईं न ?"

मृण्मयी इस सवालका जवाब देना फजूल समझकर सोने लगी; मगर अपूर्वको नींद नहीं आई, तकिया ऊँचा करके उसके सहारे बैठा रहा।

बहुत रात बीते, सहसा आकाशमें चाँद दिखाई दिया, और उसकी चाँदनी बिस्तरपर आकर फैल गई। अपूर्व उस उजालेमें मृण्मयीके चेहरेकी ओर देखने लगा। देखते-देखते उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे रूपकथाकी राजकुमारीको कोई चाँदीकी छड़ी छुआकर अचेत कर गया हो। एक बार सिर्फ सोनेकी छड़ी छुआते ही इस सोती हुई आत्माको जगाकर उससे माला बदली जा सकती है। चाँदीकी छड़ी हँसी है, और सोनेकी छड़ी आँसू।

तड़के ही अपूर्वने मृण्मयीको जगा दिया; बोला—"मृण्मयी, मेरे जानेका समय हो गया। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी माके यहाँ पहुंचा आऊं।"

मृण्मयी बिस्तरसे उठकर चलनेके लिए खड़ी हो गई। अपूर्वने उसके दोनों हाथ थामकर कहा—"अब एक प्रार्थना और है तुमसे। मैंने कितने ही मौकेपर तुम्हें मदद पहुंचाई है, आज परदेस जाते वक्त तुम मुझे उसका इनाम दोगी?"

मृण्मयीने आश्चर्यके साथ पूछा—"क्या?"

अपूर्वने कहा—"तुम मुझे अपनी तबीयतसे, प्यारसे, मुझे एक चुम्बन दो।"

अपूर्वकी इस अजीब प्रार्थना और गम्भीर चेहरेको देखकर मृण्मयी हँसने लग गई; और फिर मुश्किलसे उस हँसीको रोककर चुम्बन देनेको आगे बढ़ी; अपूर्वके मुँहके पास मुँह ले जाकर उससे न रहा गया, खिलखिलाकर हँस पड़ी; इस तरह दो बार किया और अन्तमें खामोश होकर आँचलसे मुंह ढककर हँसने लगी। और-कुछ न बन पड़ा तो अपूर्वने डाटनेके बहाने उसके बाएँ कानकी लोलकी पकड़कर हिला दी।

अपूर्वने एक बड़ी कड़ी प्रतिज्ञा कर रखी थी; और वह यह कि डाका डालकर या लूट-खसोटकर वह कुछ नहीं लेना चाहता, इसमें वह अपना अपमान समझता है। वह चाहता है कि देवताके समान सगौरव रहकर स्वेच्छासे भेंट किये हुए उपहारको ग्रहण करे, अपने हाथसे उठाकर कुछ भी न ले।

मृण्मयी फिर नहीं हँसी। अपूर्व उसे प्रभातके सुनहले प्रकाशमें

निर्जन मार्गसे उसकी माके घर पहुंचा आया। और फिर घर आकर अपनी मासे बोला—"सोच-विचारकर देखा कि बहूको अपने साथ कलकत्ता ले जानेसे पढ़ाईमें बड़ा हर्ज होगा, और उसकी वहाँ कोई साथिन भी नहीं है ;—तुम तो उसे अपने पास रखना नहीं चाहतीं, इसलिए मैं उसे मायके पहुंचा आया हूं।"

इस तरह गहरे अभिमानकी स्थितिमें ही माता-पुत्रका विच्छेद हुआ।

७

मायके आकर मृण्मयीको मालूम हुआ कि अब वहाँ उसका किसी तरह मन ही नहीं लगता। उस घरमें मानो शुरूसे आखिर तक सब-कुछ बदल गया है, पहलेका-सा कुछ भी नहीं रहा। समय काटे नहीं कटता। क्या करे, कहाँ जाय, किससे मिले, कुछ समझमें नहीं आया।

मृण्मयीको सहसा ऐसा लगने लगा कि मानो घर-भरमें, और सारे गाँवमें, कोई आदमी ही नहीं है ; मानो दोपहरको सूर्यग्रहण हुआ है। यह बात किसी भी तरह उसकी समझमें नहीं आई कि आज जो कलकत्ता जानेके लिए उसकी तबीयत इतनी फड़फड़ा रही है, कल रातको उसकी वह तबीयत कहाँ गई थी ? कल वह नहीं जानती थी कि जीवनके जिस हिस्सेको छोड़कर कलकत्ता जानेमें उसका जी इतना आगा-पीछा कर रहा है, आज उसका सारा स्वाद ही बदल जायगा। पेड़के पके पत्तेकी तरह डंठलसे गिरे हुए उस अतीत जीवनको आज उसने अपनी इच्छासे अनायास ही दूर फेंक दिया।

पुरानी कहानियोंमें सुना करते हैं कि पहले निपुण अस्त्रकार ऐसी बारीक तलवार बना सकते थे कि जिससे आदमीको काटकर दो टुकड़े कर देनेपर भी उसे मालूम नहीं पड़ता था और जब उसे हिलाया जाता था तो उसके दो टुकड़े हो जाते थे। विधाताकी तलवार ऐसी ही सूक्ष्म है कि कब उन्होंने मृण्मयीके बाल्य और यौवनके बीचमें वार किया, वह जान ही न सकी; आज न-जाने कैसे जरा हिल जानेसे उसका बाल्य-अंश यौवनसे अलग जा गिरा, और तब वह ताज्जुबमें आकर व्यथित होकर देखती ही रह गई!

मायकेमें, उसकी वह पुरानी कोठरी उसे अपनी नहीं मालूम हुई। जो मृण्मयी वहाँ रहती थी, अब मालूम हुआ कि वहाँ वह नहीं रही। अब हृदयकी सारी स्मृति एक दूसरे ही घरमें, दूसरे ही कमरेमें, दूसरी ही शय्याके आसपास गूँजती हुई उड़ने लगी। मृण्मयी अब बाहर नहीं दिखाई देती। अब उसकी हास्यध्वनि भी नहीं सुन पड़ती। राखाल उसे देखकर डर जाता है। खेल-कूदकी बात तो अब उसके मनमें भी नहीं आती।

मृण्मयीने अपनी मासे कहा—"अम्मा, मुझे ससुराल ले चल।"

उधर कलकत्ता जाते समय पुत्रके उस उदास चेहरेकी याद कर-करके माकी छाती फटी जा रही थी। गुस्सेमें आकर बहूको वह समधिनके घर छोड़ आया, यह बात उनके मनमें सुईकी तरह चुभने लगी।

इतनेमें, एक दिन घूँघट मारकर बहू बनकर मृण्मयी आ पहुंची, चेहरा उसका मुरझा-सा गया था, और उसने सासके पाँव लागे।

सासकी आँखोंमें आँसू भर आये; और उसी क्षण बहूको उन्होंने छातीसे लगा लिया। क्षण-भरमें दोनोंका मिलाप हो गया। बहूके चेहरेकी तरफ देखकर सासको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह मृण्मयी रही ही नहीं! ऐसा परिवर्तन तो साधारणतः सबके लिए सम्भव नहीं। बड़े परिवर्तनके लिए बड़े बलकी जरूरत है।

सासने खूब सोच-विचारके बाद तय किया था कि बहूके दोष वे एक-एक करके सब सुधार लेंगी; लेकिन यहाँ तो पहले ही से किसी अदृश्य सुधारकने संक्षिप्त उपायसे मानो उसे नया ही जन्म दे दिया।

अब मृण्मयीने सासको पहचान लिया और सासने मृण्मयीको। वृक्षके साथ शाखा-प्रशाखाओंका जैसा मेल होता है उसी तरह सारी घर-गृहस्थी मानो आपसमें मिलकर अखंड एक हो गई।

यह जो एक गम्भीर-स्निग्ध विशाल रमणी-प्रकृति मृण्मयीके सारे शरीरमें, सम्पूर्ण अन्तःकरणमें, अणु-अणुमें व्याप्त हो गई है, वह मानो उसे वेदना देने लगी। प्रथम आषाढ़के श्याम और सजल नये बादलोंकी तरह उसके हृदयमें एक तरहका आँसुओंसे परिपूर्ण और दूर तक फैला हुआ अभिमान उमड़ने लगा। उस अभिमानने उसकी आँखोंकी छायादार लम्बी पलकोंपर और भी एक गहरी छाया डाल दी। वह मन-ही-मन पतिसे कहने लगी, 'मैं अपनेको न समझ सकी तो न सही, पर तुमने मुझे क्यों नहीं समझा? तुमने मुझे सजा क्यों नहीं दी? तुमने मुझे अपनी इच्छाके अनुसार क्यों नहीं चलाया? मुझ डाइनने जब तुम्हारे

साथ कलकत्ता चलनेकी मनाही कर दी, तो तुम मुझे जबरदस्ती पकड़कर क्यों नहीं ले गये? तुमने मेरी बात क्यों सुनी, मेरी जिद क्यों पूरी की, मेरी हुक्मउदूलीको क्यों सहा?'

उसके बाद, फिर उसे उस दिनकी याद उठ आई, पहले-पहल जिस दिन अपूर्व सवेरे तालाबके किनारे सुनसान रास्तेमें उसे कैद करके, मुंहसे कुछ न कहकर सिर्फ उसके चेहरेकी तरफ देखता रहा था। उस दिनके उस तालाबकी, उस रास्तेकी, पेड़के नीचे उस छायाकी, सवेरेकी उस सुनहली धूपकी, हृदय-भारसे झुकी हुई उस गहरी चितवनकी उसे याद उठ आई, और सहसा उसका पूरा-पूरा अर्थ उसकी समझमें आ गया। उसके बाद, विदाके दिन जिस चुम्बनको वह अपूर्वके ओठों तक ले जाकर लौटा लाई थी वह अधूरा चुम्बन अब मरु-मरीचिकाकी ओर प्यासे हिरणकी तरह उत्तरोत्तर तेजीके साथ उस बीते हुए अवसरकी ओर उड़ान भरने लगा; परन्तु प्यास उसकी किसी भी तरह नहीं मिटी। अब रह-रहकर उसके मनमें यही बातें आती हैं—अरे, उस समय अगर ऐसा करती, उनकी बातका अगर ऐसा जवाब देती, तब अगर ऐसा करती, इत्यादि।

अपूर्वके मनमें इस बातका बड़ा रंज रहा कि मृणमयीने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं; और मृण्मयी भी आज बैठी-बैठी सोच रही है कि उन्होंने उसे क्या समझा होगा, क्या सोचते होंगे वे! अपूर्वने उसे ऊधमिन, चंचल, नासमझ, नादान लड़की समझ लिया; लबालब भरे हुए हृदयामृतकी धारासे अपनी प्रेम-पिपासा मिटानेमें उसे समर्थ तरुणी नहीं समझा;—इसी

पश्चात्तापसे, धिक्कारसे, मारे शरमके वह धरतीमें गड़ी जाने लगी; और, प्रियतमके चुम्बन और सुहागके उन ऋणोंको वह अपूर्वके तकियेको दे-देकर उऋण होनेकी कोशिश करने लगी।

इसी तरह बहुत दिन बीत गये।

जाते वक्त अपूर्व कह गया था, 'जब तक तुम चिट्ठी न लिखोगी, तब तक मैं नहीं आऊँगा।' मृण्मयी उसी बातको याद करके एक दिन घरका दरवाजा बन्द करके चिट्ठी लिखने बैठी। अपूर्वने उसे जो सुनहरी किनारीके रंगीन कागज दिये थे उन्हें निकालकर बैठी-बैठी सोचने लगी, क्या लिखे। बड़ी सावधानीसे अच्छी तरह हाथ जमाकर टेढ़ी-मेढ़ी लकीर बनाकर उंगलियोंमें स्याही पोतकर छोटे-बड़े हरूफोंमें ऊपर कुछ सम्बोधन बिना किये ही एकदम लिख दिया—"तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं देते। तुम कैसे हो। तुम घर आओ।" और क्या लिखे, सोचकर कुछ तय न कर सकी। असल बात जो थी सो सब लिखी जा चुकी; लेकिन मनुष्य-समाजमें मनका भाव और भी जरा कुछ बढ़ाकर प्रकट किया जाना चाहिए। मृण्मयीको भी यह कमी खटकी। इसलिए उसने और भी बहुत देर तक सोच-सोचकर और कुछ नये शब्द जोड़ दिये—"अब तुम मुझे चिट्ठी देना, और कैसे रहते हो लिखना, और घर आना, मा अच्छी तरह हैं, बिसू, पुत्ती सब अच्छी तरह हैं, और कल हमारी काली गायके बछड़ा हुआ है।"—इतना लिखकर चिट्ठी खतम कर दी। चिट्ठीको लिफाफेमें बन्द करके प्रत्येक अक्षरपर एक-एक बूँद हृदयका प्रेम टपकाकर उसपर लिखा, श्रीयुत बाबू अपूर्वकुमार राय। प्रेम

चाहे जितना उँड़ेला गया हो, लेकिन तो भी सतर सीधी, अक्षर सुन्दर और हिज्जे सही नहीं हुए।

लिफाफेपर नामके सिवा और भी कुछ लिखना जरूरी है, मृणमयी इस बातसे नावाकिफ थी। कहीं सास या और-कोई देख न ले, इस शरमसे उस चिट्ठीको उसने एक विश्वस्त दासीके हाथ डाकमें डलवा दिया।

कहनेकी जरूरत नहीं कि उस चिट्ठीका कुछ नतीजा नहीं निकला; अपूर्व घर नहीं आया।

८

माने देखा कि कालेजकी छुट्टियाँ हो गईं, फिर भी अपूर्व घर नहीं आया। सोचा, अब भी वह उनसे गुस्सा है। मृणमयीने भी समझ लिया कि अपूर्व उससे नाराज है; तब वह अपनी चिट्ठीकी याद करके मारे शरमके गड़-गड़ जाने लगी। वह चिट्ठी उसकी कितनी तुच्छ थी, उसमें तो कोई बात ही नहीं लिखी गई, उसके मनका भाव तो उसमें कुछ जाहिर ही नहीं हुआ, उसे पढ़कर वे मन-ही-मन और भी अवज्ञा करते होंगे, यह सोच-सोचकर वह तीरसे बिंधे हुए शिकारकी तरह भीतर-ही-भीतर तड़फने लगी। दासीको उसने बार-बार पूछा—"उस चिट्ठीको तू डाकमें डाल आई थी?" दासीने उसे हजार बार विश्वास दिलाकर कहा—"हाँ, बहूजी, मैं अपने हाथसे चिट्ठीके बकसमें डाल आई हूँ। बाबूजीको वह मिल भी गई होगी कभीकी।"

अन्तमें अपूर्वकी माने एक दिन मृणमयीको बुलाकर कहा—

'बहू, अपू बहुत दिनोंसे घर नहीं आया, मन चाहता है कलकत्ता जाकर उसे देख आऊँ। तुम साथ चलोगी ?"

मृण्मयीने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया; और अपने कमरेमें जाकर, दरवाजा बन्द करके, बिस्तरपर पड़कर, तकियेको छातीसे लगाकर, हँसकर, इधरसे उधर करवट लेकर, हृदयके आवेगको मनमानी छुट्टी देकर हल्की होने लगी। उसके बाद क्रमशः गम्भीर बनकर, उदास होकर, आशंकामें डूबकर, बैठकर रोने लगी।

अपूर्वको कोई खबर बिना दिये ही वे दोनों अनुतप्ता स्त्रियाँ उसकी प्रसन्नताकी भीख माँगनेके लिए कलकत्ता चल दीं।

अपूर्वकी मा कलकत्तामें अपने दामादके यहाँ ठहरीं।

उस दिन, शामको मृण्मयीके पत्रकी आशा छोड़कर निराश होकर अपूर्व प्रतिज्ञा भंग करके खुद ही उसे चिट्ठी लिखने बैठा था। कोई भी शब्द मनको पसंद नहीं आ रहा; वह ऐसा कोई सम्बोधन ढूंढ़ रहा था कि जिसमें पूर्ण प्रेम भी प्रकट हो और अभिमान भी, शब्द ढूंढ़े न मिला तो मातृ-भाषापर उसकी अश्रद्धा बढ़ने लगी। इतनेमें उसे बहनोईका पत्र मिला कि 'तुम्हारी मा आई हैं, जल्दी आकर मिलो, और रातको यहीं ब्यालू करना। समाचार सब अच्छे हैं।' समाचार अच्छे होनेपर भी उसका मन अमंगलकी आशंकासे विमर्श हो उठा। झटपट उठकर चल दिया बहनोईके घर।

भेंट होते ही मासे उसने पूछा—"मा, सब राजी-खुशी है न ?"

माने कहा—"सब खुशी-राजी है। छुट्टियोंमें तू घर नहीं गया, इसीसे मैं तुझे लेने आई हूं।"

अपूर्वने कहा—"इसके लिए इतनी तकलीफ उठाकर यहाँ आनेकी क्या जरूरत थी। कानूनकी परीक्षा देना था—" इत्यादि।

खाते वक्त बहनने पूछा—"भइया, आते वक्त भाभीको तुम साथ क्यों नहीं लाये? छोड़ क्यों आये थे?"

भइयाने गम्भीरताके साथ कहा—"कानूनकी पढ़ाई थी", इत्यादि।

बहनोईने हँसकर कहा—"यह सब झूठी अफवाहें हैं, असलमें हमारे डरसे लानेकी हिम्मत नहीं पड़ी!"

बहन बोली—"हैं भी तो डरावने आदमी! छोटे बच्चे कहीं अचानक इन्हें देख लेते हैं तो मारे डरके उन्हें बुखार आ जाता है।"

इस तरह हँसी-मजाक चलने लगा; पर अपूर्व बिलकुल उदास ही बना रहा। कोई भी बात उसे अच्छी नहीं लग रही थी। वह सोच रहा था, 'मा जब कलकत्ता आईं, तो मृण्मयी चाहती तो माके साथ आसानीसे आ सकती थी। शायद माने उसे साथ लानेकी कोशिश भी की होगी; लेकिन वह अल्हड़ लड़की राजी नहीं हुई होगी।' और इस विषयमें संकोचके कारण मासे वह कुछ पूछ भी न सका। सारा मानव-जीवन और विश्वकी रचना उसे शुरूसे आखिर तक व्यर्थ मालूम होने लगी।

भोजन करनेके बाद बड़ी जोरकी आँधी आई; और घनघोर वर्षा होने लगी।

बहनने कहा—"भइया, आज यहीं रह जाओ।"

भइयाने कहा—"नहीं, मुझे काम है, जाना होगा।"

बहनोईने कहा—"रातको तुम्हें ऐसा क्या काम है? एक

रातके लिए यहाँ रह ही गये तो क्या, तुम्हें तो किसीको जाकर कैफियत नहीं देना, फिर फिकर किस बातकी ?"

बहुत कहने-सुननेके बाद, बिलकुल तबीयत न होनेपर भी अपूर्व रातको वहीं सोनेके लिए राजी हो गया।

बहनने कहा—"भइया, तुम थके हुए मालूम होते हो, अब जगो मत, चलो, सोओ चलकर।"

अपूर्वकी भी यही इच्छा थी कि बिस्तरपर अँधेरेमें अकेला जाकर सो रहे तो उसकी जान बचे। बातका जवाब देना भी उसे अखरता था।

सोनेके लिए जिस कमरेके द्वार तक पहुंचाया गया वहाँ जाकर देखा कि भीतर अँधेरा है। बहनने कहा—"हवासे बत्ती बुझ गई मालूम होती है; दूसरी बत्ती लिये आती हूं।"

अपूर्वने कहा—"नहीं, जरूरत नहीं, बत्ती जलाकर सोनेकी मेरी आदत नहीं।"

बहनके चले जानेपर अपूर्व अँधेरे कमरेमें सावधानीके साथ पलंगकी ओर बढ़ा।

पलंगपर बैठना ही चाहता था कि इतनेमें सहसा चूड़ियोंके खनकनेकी आवाज हुई; और एक सुकोमल बाहु-पाशने उसे कठिन बन्धनमें बाँध लिया और फूलसे कोमल व्याकुल ओठोंने डाकूकी तरह आकर, अविरल अश्रुधारासे भीगे हुए आवेगपूर्ण चुम्बनोंके मारे उसे आश्चर्य प्रकट करने तकका मौका न दिया। अपूर्व पहले तो चौंक पड़ा; उसके बाद उसकी समझमें आया कि बहुत दिनों पहले जो काम सिर्फ हँस देनेके कारण ही अधूरा रह गया था, उसे आँसुओंकी धाराने आज समाप्त कर दिया।

फ़र्क़

नातेके ख्यालसे देखा जाय तो वनमाली और हिमांशुमाली दोनों ममेरे-फुफेरे भाई हैं ; सो भी बहुत हिसाब लगानेपर। लेकिन इन दोनोंका कुटुम्ब बहुत दिनोंसे पड़ोसी रहा है ; बीचमें सिर्फ एक बगीचेका फासला है, इसीलिए इनका नाता बहुत नजदीकका न होनेपर भी मेल-जोल और घनिष्ठता काफी है। वनमाली हिमांशुसे बड़ा है। हिमांशुके जब दाँत नहीं निकले थे और वह बोल भी नहीं सकता था, तब वनमालीने गोदमें लेकर इसी बगीचेमें उसे सुबह-शाम हवा खिलाई है, खेल सिखाया है, रोना बन्द कराया है, थपकियाँ देकर मीठी नींद सुलाया है और बच्चोंको बहलानेके लिए परिणत-बुद्धि प्रौढ़ व्यक्तियोंको जोरसे सिर हिलाना और अंटसंट बोलना आदि जो भी कुछ उमरके खिलाफ चंचलता और और जोरका उद्यम करना पड़ता है उसमें भी वनमालीने कोई बात उठा नहीं रखी थी।

वनमाली ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं है। उसे बगीचेका शौक था, और था इस दूरके नातेके छोटे भाईपर प्रेम और मोह। वह उसे एक दुर्लभ और कीमती लताकी तरह अपने हृदयका स्नेह सींचकर पाल रहा था। और जब वह लता उसके तमाम अन्तर-बाहरको ढककर खूब फलने-फूलने लगी तब वनमाली अपनेको धन्य समझने लगा।

आम तौरपर ऐसा देखनेमें नहीं आता ; किन्तु कोई-कोई स्वभाव ऐसा होता है जो एक छोटीसी कल्पना या एक छोटेसे

बच्चे या किसी अकृतज्ञ मित्रके लिए बड़ी आसानीसे अपनेको सम्पूर्णतः विसर्जन कर देता है और इस विशाल पृथ्वीपर सिर्फ एक छोटेसे स्नेहके कारोबारमें वह अपने जीवनका सारा मूलधन लगाकर निश्चिन्त हो जाता है; फिर, या तो वह जरासे मुनाफेपर परम सन्तोषके साथ जीवन बिता देता है, या सहसा किसी दिन प्रभातमें अपना घर-द्वार सब बेचकर राहका भिखारी हो जाता है।

हिमांशुकी उम्र जब और थोड़ी बढ़ गई, तब उम्र और नातेका काफी तारतम्य होनेपर भी, वनमालीका उसके साथ मानो मित्रताका बन्धन कायम हो गया। दोनोंमें मानो छोटे-बड़ेका कोई भेद ही न रहा।

ऐसा होनेका एक कारण भी था। हिमांशु पढ़ता-लिखता था और उसकी ज्ञानपिपासा स्वभावतः बहुत तेज थी। पुस्तक पाते ही पढ़ने बैठ जाता, इससे फालतू पुस्तकें भी बहुत पढ़ी गईं, फिर भी, चाहे जैसे भी हो, चारों तरफसे उसके मनने एक पूर्णता प्राप्त कर ली थी। वनमाली विशेष श्रद्धाके साथ उसकी बात सुनता, उससे सलाह लेता, उसके साथ छोटी-बड़ी सब बातोंकी चरचा करता, किसी भी विषयमें बालक समझकर उसकी अवज्ञा न करता। हृदयके प्रथम स्नेह-रससे जिसे पाल-पोसकर आदमी बनाया गया है, उमर पाकर वही अगर अपनी बुद्धि ज्ञान और उन्नत स्वभावके कारण श्रद्धाका अधिकारी बन जाय, तो उसके समान ऐसी परम प्रिय वस्तु संसारमें शायद ही कोई हो।

बगीचेका शौक हिमांशुको भी था। लेकिन इस विषयमें दोनों मित्रोंमें कुछ भेद था। वनमालीको था हृदयका शौक, और

हिमांशुको बुद्धिका। जमीनके ये कोमल पौधे और लताएँ, यह अचेतन जीवन-राशि, जो आदर-जतनकी जरा भी लालसा नहीं रखती और साथ ही जतन पानेपर घरके बाल-बच्चोंकी तरह बढ़ती रहती है, और जो आदमीके बाल-बच्चोंसे भी बढ़कर बच्चे हैं, उनको जतनसे पाल-पोसकर बड़ा बनानेके लिए वनमालीमें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। किन्तु हिमांशुमें पेड़-पौधोंके प्रति एक कुतूहल-दृष्टि थी। अंकुर निकल आये, कुल्ले फूटने लगे, बौर लग गये, फूल खिलने लगे, इन सब बातोंमें उसका खूब मन लगता था।

बीज बोने, कलम लगाने, खाद देने, मचान बाँधने आदिके विषयमें हिमांशुको नई-नई बातें सूझतीं और वनमाली उन्हें बड़े आनन्दके साथ सुनता। इस बगीचेके लिए आकृति-प्रकृतिके जितने प्रकार भी संयोग-वियोग सम्भव हो सकते हैं, दोनों मिलकर सब करते।

दरवाजेके सामने बगीचेके बीचमें एक पक्की वेदी-सी बनी थी। चार बजते ही वनमाली एक महीन कुड़ता पहनकर, चुना हुआ दुपट्टा कंधेपर डालकर, हाथमें नलीदार हुक्का लिये वहीं छायामें जाकर बैठ जाता। कोई मित्र भी पास नहीं और न हाथमें कोई पुस्तक या अखबार। बैठा-बैठा हुक्का पीता और तिरछी निगाहसे उदासीन भावसे कभी दायें और कभी बायें देखा करता। इसी प्रकार उसका समय हुक्केके धुएँकी तरह धीरे-धीरे बहुत ही हलका होकर उड़ जाता, शून्यमें विला जाता, कहीं भी उसका कोई चिह्न तक न रह जाता।

अन्तमें जब हिमांशु स्कूलसे लौटकर कलेवा करके हाथ-मुँह

धोकर दिखाई देता, तब वह झटपट हुक्केकी नली छोड़कर उठ बैठता। तब उसके आग्रहको देखकर सहज ही समझमें आ जाता कि अब तक वह किसके लिए बैठा-बैठा धीरजके साथ इन्तजार कर रहा था।

उसके बाद दोनों जने बगीचेमें बातें करते हुए टहलते। अँधेरा हो आनेपर दोनों बेञ्चपर बैठ जाते, दक्षिणकी हवा पेड़के पत्तोंको हिलाती हुई बही चली जाती, किसी-किसी दिन हवा चलती भी न थी, पेड़-पौधे तसवीरकी तरह निश्चल खड़े रहते, सिरपर आकाश-भरमें तारे चमकते रहते।

हिमांशु बातें करता; वनमाली चुपचाप सुनता रहता। जो बात समझमें न आती वह भी उसे अच्छी लगती; जो बातें और किसीके मुंहसे बहुत ही बुरी और रूखी मालूम दे सकती थीं वे ही बातें हिमांशुके मुंहसे अच्छी लगतीं। ऐसे श्रद्धावान् प्रौढ़ श्रोताके मिल जानेसे हिमांशुकी भाषण-शक्ति, स्मृति-शक्ति और कल्पना-शक्तिको विशेष लाभ होता। वह कुछ पढ़कर कहता, कुछ सोचकर कहता और कुछ उपस्थित-बुद्धिमें जो आता सो कह डालता; और, कभी-कभी कल्पनाकी सहायतासे अपने ज्ञानकी कमीको ढक भी लेता। बहुत-सी ठीक बातें कहता, बहुत-सी गलत भी कह डालता; पर वनमाली सबको गंभीरतासे सुनता। बीच-बीचमें दो-एक बात वह भी कहता, किन्तु हिमांशु उसकी बात काटकर जो उसे समझा देता उसीको वह ठीक समझ लेता; और उसके दूसरे दिन छायामें बैठकर हुक्का पीता हुआ उन बातोंको बहुत देर तक आश्चर्यके साथ सोचता रहता।

इतनेमें एक बखेड़ा उठ खड़ा हुआ। वनमाली और हिमांशुके मकानके बीचमें एक पानीका नाला था; उस नालेमें एक जगह एक नीबूका पेड़ पैदा हो गया। उस पेड़पर जब फल लगते हैं तो वनमालीका नौकर उन्हें तोड़नेकी कोशिश करता है और हिमांशुका नौकर उसे रोकता है; और इस बारेमें दोनों ओरसे गाली-गलौजकी जो वर्षा होने लगती है उस वर्षामें अगर जरा भी तत्त्व होता, तो शायद तमाम नाला भर जाता।

नतीजा यह हुआ कि वनमालीके पिता हरचन्द और हिमांशुके पिता गोकुलचन्दमें इसी बातको लेकर तकरार हो गई। दोनों फरीक नालेके अधिकारीका निर्णय करानेके लिए अदालत पहुँचे।

वकील-बैरिस्टरोंमें जितने भी महारथी थे, सभीने दोनोंमेंसे किसी-न-किसीका पक्ष लेकर वाक्युद्ध शुरू कर दिया। दोनों ओरसे इतने रुपये खर्च हुए कि सावन-भादोंकी वर्षामें उस नालेमेंसे उतना पानी भी कभी न बहा होगा।

अन्तमें हरचन्दकी जीत हुई। साबित हो गया कि 'नाला हरचन्दका ही है; और नीबूके पेड़पर किसीका भी हक नहीं।' अपील हुई; लेकिन नाला और नीबूका पेड़ हरचन्दका ही रहा।

जितने दिन मुकदमा चलता रहा, दोनों भाइयोंकी मित्रतामें कोई फर्क न आया। इस आशंकासे कि शायद कहीं झगड़ेकी छाया उन्हें छू न ले, वनमाली दूनी घनिष्ठतासे हिमांशुको अपने हृदयके पास बाँध रखनेकी कोशिश करने लगा; और हिमांशुने भी जरा भी विमुखता नहीं दिखलाई।

जिस दिन अदालतसे हरचन्दकी जीत हुई उस दिन, घरमें,

खासकर अन्तःपुरमें, खुशियाँ मनाई जाने लगीं; सिर्फ वनमालीकी आँखोंमें नींद नहीं रही। उसके दूसरे दिन करीब चार बजे वह उदास चेहरा लिये उसी बगीचेकी वेदीपर ऐसे जा बैठा जैसे दुनियामें और-किसीके भी कुछ नहीं हुआ, सिर्फ उसीकी बड़ी भारी हार हुई है।

उस दिन, सूरज डूब गया, छै बज गये, पर हिमांशु नहीं आया। वनमालीने एक गहरी उसास लेकर हिमांशुके मकानकी ओर देखा। खुले जंगलेमें से देखा कि अलगनीपर हिमांशुके स्कूलके कपड़े लटक रहे हैं; बहुतसे चिरपरिचित लक्षणोंसे जान लिया कि हिमांशु घर ही में है। हुक्केकी नली फेंककर वह उदास मुँह लिये टहलने लगा; और हजार बार उसी जंगलेकी तरफ देखा किया; पर हिमांशु बगीचेमें नहीं आया।

शामकी बत्ती जलनेपर वनमाली धीरे-धीरे हिमांशुके घर गया।

गोकुलचन्द्र दरवाजेपर बैठे हुए गरम देहपर हवा लगा रहे थे। उन्होंने कहा—"कौन है?"

वनमाली चौंक पड़ा। मानो वह चोरी करने आया हो और पकड़ा गया हो।

काँपती हुई जबानसे बोला—"मैं हूं, मामाजी।"

मामाने कहा—"किसे ढूंढ़ने आये हो: घरपर कोई नहीं है।"

वनमाली फिर बगीचेमें लौट आया और चुपचाप बैठ गया।

जितनी रात बीतने लगी, उसने देखा कि हिमांशुके मकानके जंगले एक-एक करके सब बन्द हो गये; दरवाजेकी सँधमें से जो उजाला चमक रहा था वह भी क्रमशः बुझ गया। अँधेरी रातमें

वनमालीको ऐसा मालूम हुआ कि हिमांशुके घरके सारे दरवाजे सिर्फ उसीके लिए बन्द हो गये हैं, सिर्फ वही अकेला बाहरके अँधेरेमें पड़ा रह गया है।

दूसरे दिन फिर वह बगीचेमें आकर बैठ गया ; सोचने लगा, आज शायद आये तो आ सकता है। जो बहुत दिनोंसे रोज आया करता था वह एक दिनके लिए भी न आये – यह बात वह किसी भी तरह न सोच सका। कभी भी उसने यह नहीं सोचा था कि यह बन्धन किसी भी तरह टूट जायगा ; इतना निश्चिन्त था वह कि उसे पता तक नहीं कि कब उसके जीवनके सारे सुख-दुःख उस बन्धनमें जकड़ गये। आज अकस्मात् मालूम हुआ कि वह बन्धन टूट गया है ; किन्तु एक ही क्षणमें उसका यह सर्वनाश हुआ है – यह वह किसी भी तरह हृदयसे विश्वास न कर सका।

प्रतिदिन नियमसे वह बगीचेमें जाकर बैठता है, शायद दैवयोगसे किसी दिन वह आ जाय ; पर ऐसा दुर्भाग्य कि जो नियमितरूपसे प्रतिदिन हुआ करता था वह दैवयोगसे एक दिन भी न हुआ।

रविवारके दिन, वनमालीने सोचा कि पहलेकी तरह आज भी हिमांशु सवेरे हमारे यहाँ खानेको आयेगा। दृढ़ विश्वास तो उसे नहीं था, किन्तु फिर भी आशा वह न छोड़ सका। सब आये, पर वही नहीं आया।

तब वनमालीने सोचा, 'तो अब शायद खाकर ही आयेगा।' खाकर भी नहीं आया। वनमालीने सोचा कि 'शायद आज खा-पीकर सो गया है, जगनेपर आयेगा।' कब जागा, सो तो नहीं मालूम, पर आया नहीं।

फिर वही शाम हुई, रात हो गई, हिमांशुके घरके दरवाजे एक-एक करके सब बन्द हो गये, एक-एक करके सब बत्तियाँ भी बुझ गईं।

इस तरह सोमवारसे लेकर रविवार तक सप्ताहके सातों दिन उसकी तकदीरने जब छीन लिये, और आशाको आश्रय देनेके लिए हाथमें जब एक भी दिन बाकी नहीं बचा, तब हिमांशुके बन्द मकानकी तरफ उसकी डबडबाती हुई व्यथित आँखोंने एक मर्मभेदी अभिमानकी फरियाद भेजी ; जीवनकी सारी वेदनाको सिर्फ एक ही आर्तस्वरमें भरकर उसने कहा—"हे दयामय !"

ताराचन्दकी करतूत

लेखक-जातिकी प्रकृतिके अनुसार ताराचन्द जरा-कुछ झेंपू और मुँह-छिपाऊ आदमी थे। लोगोंके सामने निकलनेमें उनका सिर चकराता था। घर-बैठे कलम चलाते-चलाते उनकी दृष्टि घट गई, पीठ झुक गई, पर दुनियादारीका तजुरबा अभी बहुत ही थोड़ा है। लोक-व्योहारके बँधे हुए बोल स्वभावतः उन्हें आते न थे, इसलिए गृह-दुर्गसे बाहर वे अपनेको किसी भी तरह सुरक्षित न समझते थे।

लोग भी उन्हें एक अजीब ही चीज समझते थे ; और इसमें उनका कोई दोष भी नहीं। मान लो, पहली मुलाकातमें किसी भलेमानसने उनसे बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि 'आपके साथ मिलकर मुझे इतनी खुशी हुई कि जिसकी हद नहीं।' ताराचन्द चुपचाप

बैठे बड़े ध्यानके साथ अपनी दाहनी हथेली देखने लगे। सहसा उस नीरवताका अर्थ ऐसा मालूम होता है कि 'हाँ, तुम्हें जो खुशी हुई सो हो सकती है ; पर मुझे भी खुशी हुई है ऐसा झूठ मैं कैसे मुँहसे निकालूं — यही सोच रहा हूं।'

दोपहरके लिए न्योता देकर लखपती घरका मालिक जब तीसरे पहर थाली परोसवाना शुरू करता है, और बीच-बीचमें विनीत प्रार्थनाके साथ भोज्य पदार्थकी तुच्छताके विषयमें ताराचन्दको सम्बोधन-पूर्वक कहता रहता है, 'कुछ भी न बन सका, गरीबकी रूखी-सूखी है, विदुरका आयोजन है, आपको सिर्फ तकलीफ देना है', तब भी ताराचन्द ऐसे ही चुप बने रहते जैसे उसकी बात इतनी सही है कि उसका जवाब नहीं दिया जा सकता।

कभी-कभी ऐसा भी होता कि जब कोई भलामानस ताराचंदसे आकर कहता कि उनके समान अथाह पाण्डित्य इस जमानेमें मिलना मुश्किल है, सरस्वती अपना पद्मासन त्यागकर उनके कण्ठमें बस गई हैं, तब भी ताराचन्द उसका जरा भी प्रतिवाद नहीं करते, मानो सचमुच ही सरस्वती उनका कण्ठ घेरे बैठी हों। ताराचन्दको यह जानना चाहिए कि मुँहपर जो प्रशंसा करते हैं, और दूसरोंके सामने जो अपनी निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे दूसरोंसे जवाब पानेकी आशासे ही बहुत-कुछ असंकोच अत्युक्ति कर डालते हैं ; दूसरा पक्ष यदि शुरूसे आखिर तक तमाम बातें यों ही सुनता रहे तो वक्ता अपनेको ठगाया गया समझकर बहुत ही दुःखित होता है। बल्कि उस हालतमें लोग अपनी बात झूठ साबित होनेपर भी उलटे खुश ही होते हैं।

घरके आदमियोंके साथ ताराचन्द्का व्यवहार दूसरी तरहका है; और तो क्या, उनकी खास स्त्री दाक्षायनी भी उनके साथ बातोंमें नहीं जीत पातीं। उन्हें बात-बातपर कहना पड़ता है, 'रहने दो, रहने दो; मैं हारी, तुम जीते, बस! मुझे अभी और भी बहुतसे काम करने हैं।' वाक्-युद्धमें अपनी स्त्रीके मुँहसे हार मनवा लें, ऐसी शक्ति और इतना सौभाग्य कितने पतियोंको प्राप्त है?

ताराचन्दके दिन बड़े मजेमें बीत जाते हैं। दाक्षायनीको इस बातका पक्का विश्वास था कि विद्या-बुद्धि और शक्तिमें उनके पतिके बराबरीका कोई नहीं है, और इस बातको वह मुँह खोलकर कह भी डालती हैं; सुनकर ताराचन्द्र कहते, 'तुम्हारे एकके सिवा दूसरा पति ही नहीं, तुलना करो भी तो किससे?' इसपर दाक्षायनी बहुत-गुस्सा हो जातीं।

दाक्षायनीको सिर्फ एक ही बातका अफसोस था, वह यह कि उसके पतिकी असाधारण शक्तिका प्रकाश पाठक-समाज तक नहीं पहुंचता। और न पतिकी तरफसे इस बारेमें कुछ कोशिश ही होती है। ताराचन्द्र जो लिखते हैं उसे छपाते नहीं।

दाक्षायनी कभी-कभी अनुरोध करके पतिके मुँहसे उनकी रचना सुना करती; जितना ही उसकी समझमें न आता उतना ही वह आश्चर्यमें पड़ जाती। उसने रामायण, महाभारत, कविकङ्कण चण्डी पढ़ा है और कथाएँ भी सुनी हैं; उनका सब-कुछ पानीकी तरह सरलतासे समझमें आ जाता है, निरक्षर लोग भी आसानीसे समझ लेते हैं; किन्तु उसके पतिकी रचनाके समान पूरी तरहसे

न समझमें आनेवाली ऐसी आश्चर्यकी चीज उसने पहले कहीं नहीं सुनी।

वह मन-ही-मन सोचती, जब यह पुस्तक छपकर निकलेगी और कोई भी जब उसका एक अक्षर भी न समझ सकेगा तब देश-भरके लोग आश्चर्यसे दंग रह जायँगे। उसने हजारों बार पतिसे कहा—"इन सबको जल्दी छपा क्यों नहीं डालते!"

पति कहते—"पुस्तकके छपानेके विषयमें भगवान् मनु स्वयं कह गये हैं, 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला'।"

ताराचन्दके चार सन्तान हैं, और चारों ही कन्या। दाक्षायनी समझती थी कि यह गर्भधारिणीकी ही त्रुटि है; और इसके लिए अपनेको वह अपने प्रतिभाशाली पतिके तईं बिलकुल अयोग्य स्त्री समझती थी। जो पति बात-की-बातमें ऐसे-ऐसे दुरूह ग्रन्थोंकी रचना कर सकता है उसकी स्त्रीके गर्भसे लड़कियोंके सिवा और कुछ न हो, स्त्रीके लिए इससे बढ़कर अपटुता और क्या हो सकती है।

सबसे बड़ी लड़की जब पिताकी छाती तक ऊँची हो गई तब ताराचन्दकी निश्चिन्तता जाती रही। तब उन्हें होश आया कि एक-एक करके चारों लड़कियोंका ब्याह करना है, और उसके लिए काफी रुपयोंकी जरूरत है। गृहिणीने अत्यन्त निश्चिन्ततासे कहा—"तुम अगर एक बार जरा पूरा मन लगा दो, तो फिर किसी बातकी चिन्ता ही न रहे।"

ताराचन्द कुछ व्यग्रतासे पूछ उठे—"सचमुच! अच्छा, बताओ तो सही, क्या करना होगा?"

दाक्षायनीने संशय-रहित निरुद्विग्न भावसे उत्तर दिया—"कलकत्ता चले चलो, और अपनी पुस्तकें छपाओ। लोग तुम्हें जान जायँ, फिर देखना, रुपये अपने-आप आते हैं या नहीं !"

स्त्रीकी तसल्लीसे ताराचन्दको भी धीरे-धीरे तसल्ली होने लगी; और मनमें निश्चय-सा हो गया कि घर बैठे-बैठे अब तक उन्होंने जितना लिखा है उससे उनका अकेलेका ही नहीं बल्कि मुहल्ले-भरके लोगोंका कन्या-दायसे उद्धार किया जा सकता है।

अब कलकत्ता जाते समय एक जबरदस्त दिक्कत उठ खड़ी हुई। दाक्षायनीसे अपने निरीह निःसहाय पतिको किसी भी तरह अकेला छोड़ते नहीं बना। जानेको तो अकेले जा सकते हैं, पर असल सवाल यह है कि वहाँ उन्हें खिला-पिलाकर और नित्य-नैमित्तिक कर्तव्योंकी याद दिलाकर दुनियादारीके विविध उपद्रवोंसे उनकी रक्षा कौन करेगा ? और दूसरी तरफ यह परेशानी कि अनभिज्ञ पति भी अनजान जगहमें स्त्री-कन्याओंको साथ ले जानेमें डरते हैं और राजी नहीं होते। अन्तमें दाक्षायनीने मुहल्लेके एक चतुर आदमीको पतिके नित्य अभ्यासोंके बारेमें हजारों उपदेश देकर लाचारीसे उसीको अपने पदपर नियुक्त किया; और पतिको बहुत-बहुत सौगंद दिलाकर, बहुतसे तावीज-गंडे पहनाकर परदेस रवाना कर दिया। और खुद घरमें पछाड़ खाकर बिस्तरपर गिर पड़ी और रोने लगी।

कलकत्ता आकर ताराचन्दने अपने चतुर साथीकी सहायतासे 'वेदान्त-प्रभाकर' प्रकाशित किया। दाक्षायनीके गहने गिरवी रखकर जो-कुछ रुपये मिले थे उनमेंसे अधिकांश खर्च हो गये।

बिक्रीके लिए किताबोंकी दुकानोंपर और समालोचनाके लिए देशके तमाम छोटे-बड़े सम्पादकोंके पास 'वेदान्त-प्रभाकर' भेजा गया। डाकसे स्त्रीको भी एक प्रति रजिस्टरी करके भेज दी; रजिस्टरी इस डरसे की कि कहीं बीच-ही-में डाकखानेवाले न उड़ा लें।

गृहिणीने जिस दिन छपी हुई किताबके ऊपरके पृष्ठपर छापेके हरूफोंमें अपने पतिका नाम छपा देखा, उस दिन मुहल्लेकी तमाम लड़कियोंको निमन्त्रण देकर खिलाया-पिलाया। और जहाँ सबके बैठनेका स्थान था वहाँ किताब पड़ी रहने दी।

जब सब आकर बैठ गईं, तो ऊँचे स्वरमें बोलीं—"अरे, यह पुस्तक यहाँ किसने रख दी! अन्नदा, जरा उस किताबको उठा देना बहन, उठाकर रख दूं।" इन लड़कियोंमें अन्नदा पढ़ना जानती थी। फिर उसने पुस्तक उठाकर टीनके बकसपर रख दी, और कुछ देर बाद एक चीज उतारतेमें उसे हाथसे गिरा दिया; और फिर अपनी बड़ी लड़कीका नाम लेकर बोली—"सुशी, बाबूजीकी पुस्तक पढ़ना चाहती है क्या? तो लेती क्यों नहीं, पढ़ पढ़। इसमें शरम काहेकी।" लेकिन बापूजीकी पुस्तक पढ़नेके लिए सुशीलाको बिलकुल ही आग्रह न था। कुछ देर बाद फिर उसे डाटकर कहने लगी—"छिः, बेटी, बाबूजीकी किताब इस तरह बिगाड़ते नहीं, अपनी कमला जीजीके हाथमें दे दो, वह उस आलमारीके ऊपर रख देगी।"

इसमें सन्देह नहीं कि किताबके अगर जरा भी कहीं चेतना होती, तो उस एक ही दिनके उत्पीड़नसे वेदान्तका प्राणान्त हो जाता।

एक-एक करके सब समाचार-पत्रोंमें समालोचना निकलने लगी। गृहिणीने जो सोचा था वह बहुत अंशोंमें सत्य साबित होने लगा। ग्रन्थका एक भी अक्षर न समझमें आनेके कारण देश-भरके समालोचक बिलकुल विह्वल हो उठे। सभीने एकस्वरसे कहा कि 'ऐसा सारगर्भित ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ।'

जो समालोचक रेनॉल्ड्सके 'लन्दन-रहस्य'के अनुवादके सिवा और कोई पुस्तक छूते तक नहीं थे, उन्होंने बड़े उत्साहके साथ लिखा—"देशके ढेर-के-ढेर नाटक-उपन्यासोंके बदले यदि इस श्रेणीके दो-एक ग्रन्थ बीच-बीचमें निकलते रहें, तो हमारा साहित्य सचमुच ही पढ़ने-योग्य हो जाय।"

जिस व्यक्तिने वंश-परम्परासे वेदान्तका कभी नाम भी न सुना था, उसीने सिर्फ यह लिखा कि 'लेखकके साथ कई स्थलोंपर हमारा मतभेद है, स्थानाभावके कारण यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा सका; परन्तु फिर भी, साधारण तौरपर यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकारके साथ हमारे मतका बहुत जगह सामंजस्य पाया जाता है।' बात अगर सच होती, तो कम-से-कम ग्रन्थको जला देना उचित था।

देशमें जहाँ-कहीं जितने भी पुस्तकालय थे और नहीं थे उन सबके मन्त्रियोंने मुद्राके बदले मुद्राङ्कित पत्र भेजकर ताराचन्दसे ग्रन्थकी भिक्षा चाही। बहुतोंने लिख भेजा कि 'आपके इस विचारशील ग्रन्थसे देशका बड़ा भारी अभाव दूर हो गया।' विचारशील ग्रन्थ किसे कहते हैं, ताराचन्द ठीक-ठीक समझ न

सके; किन्तु फिर भी, पुलकित चित्तसे गाँठसे डाकखर्च देकर हरएक पुस्तकालयको 'वेदान्त-प्रभाकर' भेज दिया।

इस तरह बेशुमार तारीफोंकी वर्षासे ताराचन्द जब बहुत ज्यादा खुश हो रहे थे, ठीक उसी मौकेपर उन्हें घरकी एक चिट्ठी मिली कि उनकी स्त्रीके बहुत जल्द पाँचवीं सन्तान होनेवाली है; और तब कहीं वे अपने रक्षकको साथ लेकर किताबोंके रुपये वसूल करने दूकानोंपर पहुंचे।

लेकिन, प्रायः सभी दूकानदारोंने लगभग एक ही तरहका जवाब दिया, 'एक भी किताब नहीं बिकी।' सिर्फ एक दूकानदार के मुँहसे यह सुना कि 'बाहरसे एक मांग आई थी और उसे वी० पी० भी भेजी गई थी, पर वह लौट आई, उलटा उसे डाक-खर्चका दण्ड देना पड़ा।' इसलिए वह ग्रन्थकारपर बहुत ही नाराज हुआ और उसी समय किताब वापस करनेको तैयार हो गया।

ग्रन्थकार घर लौटकर बहुत-कुछ सोचते रहे; पर उनकी कुछ समझमें न आया। अपने 'विचारशील' ग्रन्थके विषयमें जितना ही ज्यादा विचार करने लगे उतना ही पाठकोंकी तरफसे किये गये अविचारपर उन्हें अफसोस होने लगा। अन्तमें जो कुछ रुपये बचे थे उन्हींके सहारे देशकी तरफ चल दिये।

घर आकर ताराचन्दने अपनी स्त्रीके आगे प्रसन्नता प्रकट की। ऐसे ही शुभ-संवादके लिए दाक्षायनी हँसती हुई प्रतीक्षा कर रही थी; और भविष्यके लिए भी करती रही।

ताराचन्दने 'गौड़-समाचार' का एक अङ्क लाकर गृहिणीकी गोदमें फेंक दिया। पढ़कर मन-ही-मन उन्होंने सम्पादकके लिए

अक्षय धन और पुत्रकी कामना की; और उनके मुँहपर मानसिक पुष्प-चन्दनका अर्घ्य दिया। समालोचना पूरी पढ़ चुकनेके बाद फिर पतिकी तरफ देखने लगी। पतिने तब 'नवप्रभात' खोलकर रख दिया। पढ़कर आनन्दसे विह्वल दाक्षायनीने फिर पतिके मुँहपर आशा-भरी स्निग्ध दृष्टि डाली।

तब ताराचन्दने 'युगान्तर' निकाला। उसके बाद? उसके बाद 'भारत-भाग्यचक्र', उसके बाद 'शुभ-जागरण', और फिर क्रमशः 'अरुणालोक', 'संवाद-तरङ्ग-भङ्ग', 'आशा', 'आगमनी', 'जागरणी', 'उच्छ्वास', 'पुष्प-मञ्जरी', 'सहचरी', 'सीता-गजट', 'अहल्या', 'लाइब्रेरी प्रकाशिका', 'ललित समाचार', 'कोतवाल', 'विश्व-विचारक', 'लावण्य-लतिका'। हँसते-हँसते गृहणीके आनन्दाश्रु झरने लगे। आँखें पोंछकर फिर एक बार पतिके कीर्ति-रश्मिसे समुज्ज्वल मुखकी ओर देखा; पतिने कहा—"अभी और भी बहुतसे अखबार बाकी हैं।"

दाक्षायनीने कहा—"उन्हें शामको देखूँगी, अब और-और बातें सुनाओ, कैसे क्या हुआ?"

ताराचन्द बोले—"अबकी बार कलकत्ता जाकर सुन आया हूं, लाट साहबकी मेमने एक किताब निकाली है; लेकिन उसमें "वेदान्त-प्रभाकर' का कोई उल्लेख नहीं किया।"

दाक्षायनीने कहा—"अरे, इन सब बातोंको जाने दो, और क्या लाये, सो बताओ?"

ताराचन्दने कहा—"कुछ चिट्ठियाँ भी हैं।"

अन्तमें उसे साफ-साफ कहना ही पड़ा—'रुपये कितने लाये?'

ताराचन्दने उत्तर दिया—"विधुभूषणसे पाँच रुपये उधार लेकर यहाँ आया हूँ।"

अन्तमें दाक्षायनीने जब सारा हाल सुना, तब दुनियाकी सचाईके बारेमें उसका तमाम विश्वास पलट गया। अवश्य ही दूकानदारोंने उनके पतिको ठग लिया है, और देश-भरके तमाम खरीददारोंने षड़यन्त्र करके दूकानदारोंको छकाया है।

अन्तमें, सहसा याद उठ आई कि उसने जिसे अपना प्रतिनिधि बनाकर पतिके साथ भेजा था उसी विधुभूषणने ही भीतर ही भीतर दूकानदारोंसे मिलकर ऐसा किया है; और जितना दिन चढ़ने लगा उतना ही साफ समझमें आने लगा कि उस मुहल्लेके विश्वम्भर चटर्जी उनके पतिके पूरे दुश्मन हैं, यह सब कार्रवाई उन्हींकी है। हाँ, जरूर, जिस दिन उसके पति कलकत्ता गये थे उसके दो ही दिन बाद विश्वम्भरको उसने बड़के नीचे खड़े-खड़े कन्हाई पालसे बात करते देखा था; और चूँकि कन्हाई पालके साथ अकसर उसकी बातचीत हुआ करती थी, इससे उस समय सन्देह नहीं हुआ, अब तो सब साफ-साफ समझमें आ रहा है।

इधर दाक्षायनीको घर-गृहस्थीकी दुश्चिन्ता दिनों-दिन बढ़ने लगी। जब अर्थोपार्जनका ऐसा अच्छा और सुगम उपाय व्यर्थ हो गया तो अपना कन्या-प्रसवका अपराध उसे चौगुना सताने लगा। विश्वम्भर, विधुभूषण या देशके अधिवासियोंको इस अपराधके लिए जिम्मेदार न कर सकीं, सारा अपराध एक अपने ही सिरपर लाद लिया, सिर्फ जो लड़कियाँ पैदा हुई हैं और होंगी

उन्हें भी जरा-जरा बाँट दिया। दिन और रात, एक घड़ीके लिए भी उनके मनमें शान्ति न रही।

ज्यों-ज्यों प्रसवका समय नजदीक आने लगा त्यों-त्यों दाक्षायनी के शरीरकी हालत बिगड़ने लगी; सबको विशेष चिन्ता हो गई। निरुपाय ताराचन्द पागलकी तरह विश्वम्भरके पास दौड़े गये, बोले—"भाई साहब, मेरी इन पचास किताबोंको गिरवी रखकर अगर कुछ रुपये दे दो, तो मैं शहरसे अच्छी दाई बुलवाकर दिखा देखूँ।"

विश्वम्भरने कहा—"भाई, इसके लिए कोई फिकर नहीं, रुपया जो लगे सो मैं दूंगा, तुम ये किताबें ले जाओ।" इतना कहकर उसने कन्हाई पालसे, बहुत-कुछ कहा-सुनी करके, कुछ रुपये लाकर दिये, और विधुभूषण स्वयं अपनी गाँठसे राहखर्च देकर कलकत्तेसे धाय ले आया।

दाक्षायनीने न-जाने क्या सोचकर पतिको कमरेमें बुलवा लिया; और अपने सरकी कसम देकर कहा—"जब कभी तुम्हें वह दर्द सतावे, तो साधुकी दी हुई वो दवा खाना न भूलना; और इस ताबीजको कभी न खोलना।" और भी बहुत-सी छोटी-छोटी बातें पतिको समझाईं, और उनका हाथ पकड़कर उनसे सब मंजूर करा लीं। फिर बोली—"विधुभूषणका तनिक भी विश्वास नहीं, उसीने हमारा सत्यानाश किया है।" नहीं तो वह औषधि, ताबीज और सरकी कसम-समेत अपने पतिको उसीके हाथ सौंप जाती।

उसके बाद उसने महादेवके समान अपने विश्वासप्रवण

भोलानाथ पतिको संसारके निर्मल कुटिल-बुद्धि षड़यन्त्रकारियोंके विषयमें बार-बार सावधान कर दिया। अन्तमें चुपकेसे बोली—"देखो, मेरे जो लड़की होगी, वह अगर जिन्दा रहे तो, उसका नाम रखना 'वेदान्त-प्रभा', उसके बाद फिर चाहे उसे प्रभा कहकर ही बुलाना, कोई हर्ज नहीं।"

इतना कहकर पतिके पाँव छुए और पाँवोंकी धूल माथेसे लगाई। मन-ही-मन कहने लगी—'सिर्फ लड़कियाँ पैदा करने ही पतिके घर आई थी। अबकी शायद उससे पिंड छूट जाय।'

धायने जब कहा—"माजी, देखना जरा, लड़की कैसी सुन्दर हुई है!" तब माने एक बार देखकर आँखें मींच लीं; और बड़े कोमल स्वरमें कहा—"वेदान्तप्रभा।" इसके बाद फिर उन्हें इस लोकमें एक भी बात कहनेका अवसर न मिला।

सजा

१

दुक्खी और छदामी कोरी दोनों भाई सवेरे उठकर जब हँसिया गँड़ासा हाथमें लिये कामपर निकले तब उन दोनोंकी बहुओंमें खूब जोरकी लड़ाई शुरू हो चुकी थी। मुहल्लेवाले, प्रकृतिकी और और नाना प्रकारकी खटपट और कलरवोंकी भाँति, इस घरकी कलह और उससे पैदा हुए शोरगुलके आदी हो गये थे। जोरकी चीख-चिल्लाहट और नारी-कण्ठकी गाली-गलौज कानमें पड़ते ही लोग आपसमें कहने लगते, 'लो, हो गया शुरू!' यानी, जैसी कि उम्मीद थी, आज भी उस स्वाभाविक नियममें कोई फरक नहीं

पड़ा। सवेरा होते ही पूरबमें सूरज निकलनेपर जैसे कोई उसका कारण नहीं पूछता, ठीक वैसे ही कोरियोंके इस घरमें जब दोनों बहुओंमें तकरार और गाली-गलौज शुरू हो जाती, तो फिर उसकी वजह जाननेके लिए मुहल्लेके किसीको रत्ती-भर भी कुतूहल नहीं होता।

हाँ, इतना जरूर है कि यह कलह-आन्दोलन पड़ोसियोंकी अपेक्षा दोनों पतियोंको ज्यादा परेशान करता है, लेकिन वे उसे किसी खास दिक्कतमें नहीं गिनते। उनका मनका भाव ऐसा है, मानो दोनों भाई संसार-यात्राका लम्बा सफर किसी इक्केमें बैठकर तय कर रहे हैं और दोनोंके दो बिना-कमानीके पहियोंके लगातार घड़घड़ खड़खड़ शब्दको उन्होंने जीवन-रथयात्राके विधि-विहित नियमोंमें ही शामिल कर लिया है। बल्कि, घरमें जिस रोज कोई शोरगुल नहीं होता, चारों ओर सन्नाटा-सा रहता है, उस दिन कब क्या आफत आ खड़ी हो, कोई कुछ अन्दाजा लगाकर कह नहीं सकता।

हमारी कहानीकी घटना जिस दिनसे शुरू होती है उस दिन शामको दोनों भाई मेहनत-मजूरी करके हारे-थके जब घर लौटे, तो देखा कि घरमें सन्नाटा छाया हुआ है।

बाहर भी काफी उमस है। दोपहरको एक बार खूब जोरसे पानी बरस चुका है; और अब भी बादल घुमड़ रहे हैं। हवाका नामो-निशान तक नहीं। वर्षासे घरके चारों तरफका जंगल और घास-पौधे वगैरह बहुत बढ़ गये हैं, वहाँसे और पानीमें डूबे हुए पटसनके खेतमेंसे एक तरहकी घनी बदबूदार भाप-सी निकल रही

है; और उसने चारों तरफ मानो एक निश्चल चहारदीवारी-सी खड़ी कर दी है। गौशालाके बगलवाली छोटी-सी तलैयामें मेढ़क टर्रटर्र कर रहे हैं और संध्याका निस्तब्ध आकाश मानो झींगुरोंकी झनकारसे बिलकुल भर-सा गया है।

पास ही बरसातकी पद्मा नदी नवीन मेघोंसे आच्छन्न होकर बहुत ही स्थिर और भयंकर रूप धारण करके स्वच्छन्दतासे बह रही है। अधिकांश खतोंको नष्ट करके वह बस्तीके करीब तक आ पहुंची है। यहाँ तक कि उसने आस-पासके दो-चार आम कटहरके पेड़ तक उखाड़कर गिरा दिये हैं; और उनकी जड़ें पानीसे बाहर दीख रही हैं, मानो वे अपनी मुट्ठीकी उंगलियोंको आकाशमें फैलाकर किसी आखिरी सहारेको पकड़नेकी कोशिश कर रही हों।

दुक्खी और छदामी उस दिन गाँवके जमींदारके यहाँ बेगार खटने गये थे। उस पारकी रेतीपर धान पक गये हैं। बरसातके पानीमें डूब जानेके पहले ही धान काट लेनेके लिए देशके गरीब किसान और मजदूर सब-कोई अपने-अपने खेतके काम या पटसन काटनेमें लग गये हैं; सिर्फ इन दोनों भाइयोंको जमींदारके आदमी जबरदस्ती बेगारीमें पकड़ ले गये थे। जमींदारकी कचहरीके छप्परमेंसे जगह-जगह पानी चू रहा था। उसकी मरम्मतके लिए और कुछ टट्टियाँ बनानेके लिए वे दिन-भर कड़ी मेहनत करते रहे हैं। खाने तककी छुट्टी न मिली कि घर आकर पेटमें कुछ डाल जाते; कचहरीकी तरफसे थोड़ेसे चने खानेको मिल गये थे। बीच बीचमें मेहमें भी भीगे हैं। हककी मजूरी भी मिल जाती, सो भी

नहीं, बल्कि उसके बदले जो उन्हें गालियाँ और फटकार मिली है वह उनकी मजूरीसे बहुत ज्यादा थी।

कीच-कहड़ और पानीमें होकर बड़ी मुश्किलसे दोनों भाई शामको घर आये। देखा तो, छोटी बहू चन्दा जमीनपर आँचल बिछाये चुपचाप औंधी पड़ी है; आजके बदलीके दिनकी तरह उसने भी दुपहरको बहुत आँसू बरसाकर शाम होते-होते खामोश होकर अपने अन्दर जोरोंकी उमस कर रखी है। और, बड़ी बहू राधा मुंह फुलाये दरवाजेपर बैठी थी, उसका डेढ़ बरसका छोटा बच्चा रो रहा था, अब, दोनों भाइयोंने जब घरमें पैर रखा तो देखा कि बच्चा नङ्ग-धड़ङ्ग आँगनके एक तरफ चित पड़ा सो रहा है।

भूखे दुक्खीने आतेके साथ ही कहा—"चल, परोस खानेको।"

बड़ी बहू एकसाथ जोरसे गरज उठी, मानो बारूदके बोरेमें चिनगारी पड़ गई हो, बोली—"खानेको कहाँ है, सो परोस दूं? चावल तू दे गया था: मैं क्या आप जाकर रोजगार कर लाती?"

सारे दिनकी थकावट और डाट-फटकार सहनेके बाद अन्नहीन निरानन्द अँधेरे घरमें, जलती-हुई क्षुधाग्निपर स्त्रीके रूखे वचन, खासकर अन्तिम वाक्यका छिपा-हुआ कुत्सित श्लेष दुक्खीको सहसा न-जाने कैसे बिलकुल असह्य हो उठा। क्रोधित व्याघ्रकी तरह वह रुद्ध-गम्भीर गर्जनके साथ बोला—"क्या कहा!" कहकर उसी दम हँसिया उठाकर स्त्रीके सिरपर जमा दिया। राधा अपनी देवरानीके पास जाकर गिर पड़ी, और पड़तेके साथ ही मर गई।

चन्दाके कपड़े खूनसे तराबोर हो गये; वह "हाय अम्मा, क्या हो गया" कहकर चिल्ला उठी। छदामीने आकर उसका

मुँह दाब लिया। दुक्खी हँसिया फककर गालपर हाथ रखके भौचक्केकी तरह जमीनपर बैठ गया। लड़का जग गया, और डरके मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बाहर तब पूरी शान्ति थी। अहीरोंके लड़के गाय-भैंस चराकर गाँवको लौट रहे थे। उस पारकी रेतीपर जो लोग पके धान काटने गये थे उनमेंसे पाँच-पाँच सात-सात जने एक-एक छोटी नावपर बैठकर, इस पार आकर, दिनभरकी मेहनत-मजूरीमें दो-चार पूला धान सिरपर लादे, लगभग सभी कोई, अपने-अपने घर आ पहुंचे हैं।

गाँवके रामलोचन-चचा डाकखानेमें चिट्ठी डालकर घर लौट आये थे और निश्चिन्त होकर चुपचाप बैठे तमाखू पी रहे थे। एकाएक उन्हें याद उठ आई, उनके शिकमी काश्तकार दुक्खीपर लगानके रुपये बाकी हैं; आजके दिन वह देनेका वादा कर गया था। यह सोचकर कि अब वह घर आ गया होगा, रामलोचन डाल कंधेपर दुपट्टा, उठा छतरी चल दिये।

दुक्खी-छदामीके घरमें घुसते ही उनके रोंगटे खड़े हो गये। देखा तो, घरमें दिआ तक नहीं जल रहा है। आँगनमें अँधेरा है, और उस अँधेरेमें दो-चार काली मूर्तियाँ अस्पष्ट दिखाई दे रही हैं। रह-रहकर बरामदेके एक कोनेसे रोनेका अस्फुट शब्द सुनाई दे रहा है; और लड़का ज्यों-ज्यों 'अम्मा-अम्मा' पुकारता हुआ रोनेकी कोशिश कर रहा है त्यों-त्यों छदामी उसका मुंह दबाता जा रहा है।

रामलोचनने कुछ डरते हुए पूछा—"दुक्खी है क्या ?"

दुक्खी अब तक पत्थरकी मूर्तिकी तरह चुपचाप बैठा था। उसका नाम लेकर पुकारते ही वह सिसक-सिसककर नासमझ बच्चेकी तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदेसे उतरकर रामलोचन-चचाके पास आँगनमें आ गया। रामलोचनने पूछा—"औरतें लड़ाई करके मुँह फुलाये पड़ी होंगी, इसीसे अँधेरा है क्यों? आज तो दिन-भर चिल्लाती ही रही हैं।"

छदामी अभी तक, क्या करना चाहिए, कुछ भी नहीं सोच पाया था। तरह-तरहकी असम्भव कल्पनाएँ उसके दिमागमें चक्कर काट रही थीं। फिलहाल उसने यही तय किया था कि कुछ रात बीते लाशको कहीं गायब कर देगा। इसी बीचमें चौधरी-चचा आ पहुंचे; इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। चटसे उसे कोई ठीक जवाब न सूझा; कह बैठा—"हाँ, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

चौधरीजी बरामदेकी ओर बढ़ते हुए बोले—"लेकिन उसके लिए दुक्खी क्यों रो रहा है?"

छदामीने देखा कि अब खैर नहीं, एकाएक कह बैठा—"तकरार करते-करते छोटी बहूने बड़ी बहूके माथेपर हँसिया मार दिया है।"

मनुष्य आई हुई विपत्तिको ही बड़ा समझता है, उसके अलावा और भी कोई आपत्ति आ सकती है—यह बात जल्दी उसके दिमागमें नहीं आती। छदामी उस समय सोच रहा था कि इस खतरनाक सत्यके पंजेसे कैसे बचे? किन्तु झूठ उससे भी बढ़कर खतरा ला सकता है, इस बातका उसे होश ही न था।

रामलोचनके पूछते ही चटसे उसके दिमागमें एक जवाब सूझा, और उसी वक्त उसने उसे कह डाला। रामलोचनने चौंककर कहा—"ऐं! क्या कहा !! मरी तो नहीं ?"

छदामीने कहा—"मर गई।" और उनके पाँवपर गिर पड़ा।

चौधरी-चचा बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। सोचने लगे, 'राम-राम, ऐन संध्याके समय कहाँ आ फँसे! अदालतमें गवाही देते-देते जान निकल जायगी।' छदामीने किसी भी तरह उनके पाँव नहीं छोड़े, बोला—"चौधरी-चचा, अब मैं अपनी बहूके बचानेके लिए क्या करूँ ?"

मामला-मुकदमोंके बारेमें सलाह देनेमें रामलोचन गाँव-भरके प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने जरा सोचकर कहा—"देख, एक काम कर तू, अभी दौड़ा जा थानेमें, कहना कि 'मेरे बड़े भाई दुक्खीने शामको घर आकर खानेको माँगा था, खाना तैयार नहीं था, सो उसने अपनी बहूके माथेमें हँसिया मार दिया है।" मैं ठीक कहता हूं, ऐसा कहनेसे तेरी बहू बच जायगी।"

छदामीका कण्ठ सूखने लगा, उठकर बोला—"चौधरी-चचा, बहू तो और भी मिल जायगी, लेकिन भाईको फाँसी हो जानेपर फिर भाई नहीं मिलनेका।" पर जब उसने अपनी स्त्रीपर दोषारोप किया था तब ये बातें नहीं सोची थीं। घबराहटमें एक बात मुंहसे निकल गई, अब अलक्षित-भावसे उसका मन अपने लिए युक्तियाँ और तसल्ली इकट्ठा करने लगा।

चचाने भी उसकी बातको युक्तिसंगत माना, बोले—"तो फिर जैसा हुआ है वैसा ही कहना; सब तरफसे बचाव होना तो

मुश्किल बात है।"—इतना कहकर रामलोचन वहाँसे चल दिये। और देखते-देखते सारे गाँवमें हल्ला हो गया कि कोरियोंके घरकी चन्दाने लड़ते-लड़ते गुस्सेमें आकर अपनी जिठानीकीके माथेमें हँसिया दे मारा है।

बाँध टूटनेपर जैसे बाढ़ आती है वैसे ही गाँवमें पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरापराधी सभी-कोई बहुत घबड़ा उठे।

२

छदामीने सोचा कि जो रास्ता बना लिया है उसीपर चलना ठीक होगा। उसने रामलोचनके सामने अपने मुंहसे जो बात कह डाली है उस बातको गाँवके सब लोग जान गये हैं; अब अगर दूसरी कोई बात कही जाय, तो न-जाने उसका क्या नतीजा निकले, क्यासे क्या हो जाय? उसकी अक्ल चकरा गई। उसने समझ लिया कि किसी तरह अपने वचनोंकी रक्षा करते हुए उसमें और भी दो-चार बातें जोड़-ज्ञाड़कर बहूको भले ही बचाया जा सकता है, और-कोई रास्ता नहीं।

छदामीने अपनी बहू चन्दासे अनुरोध किया कि वह कसूर अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उसपर मानो बिजली-सी पड़ गई। छदामीने उसे तसल्ली देकर कहा—"मैं जो कह रहा हूं उसमें तुझे किसी बातका डर नहीं, हम लोग तुझे बचा लेंगे।" तसल्ली दी तो सही, पर उसका कंठ सूख गया, मुँह फक पड़ गया।

चन्दाकी उमर सत्रह-अठारह सालसे ज्यादा न होगी। चेहरा भरा हुआ और गोल-मटोल, शरीर मँझोला, कसा हुआ, स्वस्थ और सबल; अंग-प्रत्यंगोंके गठनमें ऐसा एक सौष्ठव भरा हुआ है

कि चलने-फिरनेमें हिलने-डुलनेमें देह कहींसे भी जरा बेडौल नहीं मालूम देती। वह नई बनी-हुई नावकी तरह छोटी और सुडौल है, बहुत ही आसानीसे सरकती है और उसकी कहीं भी कोई ग्रन्थि शिथिल नहीं हुई है। संसारके सभी विषयोंमें उसके अन्दर एक तरहका कुतूहल है; मुहल्लेमें दूसरोंके घर जाकर गपशप करना उसे बहुत पसन्द है; और काँखमें पानीकी गागर लिये पनघट आते समय वह दो उंगलियोंसे घूँघटमें जरा-सा छेद करके चमकीली चंचल काली आँखोंसे रास्तेमें जो-कुछ देखने-लायक चीज होती है उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इससे उलटी थी; बहुत ही आलसिन, फूहड़ और बेशऊर। सिरका कपड़ा, गोदका लड़का, घरका काम कुछ भी उससे न सम्हलता था। हाथमें न तो कोई खास काम-काज और न फुरसत। छोटी बहू उससे ज्यादा कुछ कहती-सुनती न थी। हाँ, मीठे स्वरमें दो-एक पैने दाँत गड़ा देती, और हाय-हाय हो-हो करके गुस्सेमें बकती-झकती रहती; और इस तरह मुहल्ले-भरकी नाकमें दम करती रहती।

पर इन दो दम्पत्तियोंमें भी स्वभावकी आश्चर्यजनक एकता थी। दुक्खी देहमें कुछ लम्बा-चौड़ा हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हड्डियाँ, भद्दी नाक, आँखें ऐसी कि मानो इस दुनियाको वे अच्छी तरह समझती ही नहीं, और न उससे किसी तरहका सवाल ही करना चाहती हैं। ऐसा भोलाभाला किन्तु खतरनाक, ऐसा सबल किन्तु निरीह आदमी बिरला ही मिलेगा।

और छदामी तो ऐसा लगता है जैसे किसी चमकीले काले

पत्थरको बड़ी मेहनतसे कोदकर मूर्ति बनाई गई हो। जरा भी कहीं बाहुल्य नहीं; कहीं भी जरा दचका तक नहीं पड़ा। बल और निपुणताने मिलकर उसके प्रत्येक अंगको भरा-पूरा बना दिया है। चाहे तो नदीकी ऊँची पाड़परसे नीचे कूद पड़े, चाहे लग्गी चलावे, चाहे बाँसकी झाड़ियोंमें चढ़कर छाँट-छाँटकर उसकी टहनियाँ काट लावे—हरएक काममें उसकी पूरी होशियारी पाई जाती है; मानो सभी काम उसके लिए बहुत आसान हैं। बड़े-बड़े काले बालोंमें तेल डालकर बड़े जतनसे उन्हें काढ़कर कंधे तक लटकाये रहता है, देहकी सजावटके विषयमें उसका काफी ध्यान है।

और-और ग्राम-वधुओंके सौन्दर्यके प्रति यद्यपि उसकी उदासीन दृष्टि न थी, और अपनेको उनकी निगाहोंमें मनोरम जँचानेकी इच्छा भी उसके काफी थी, फिर भी अपनी युवती स्त्रीको वह जरा कुछ ज्यादा प्यार करता था। दोनोंमें कलह भी होती और मेल भी; कोई किसीको हरा नहीं सकता था। और भी एक कारण था जिससे दोनोंका बन्धन काफी मजबूत था। छदामी समझता था कि चन्दा जैसी चंचल प्रकृतिकी चंडूल स्त्री है उसपर बहुत ज्यादा भरोसा नहीं करना चाहिए; और चन्दा समझती थी कि उसके मालिककी चारों तरफ निगाह दौड़ती रहती है, उसे अगर कुछ कसकर न बाँधा गया तो किसी दिन हाथसे निकल जानेका डर है।

इस दुर्घटनाके कई दिन पहलेसे स्त्री-पुरुषमें बड़ी-भारी तनातनी चल रही थी। बात यह थी कि चन्दाने देखा, उसका मालिक कामके बहाने कभी-कभी दूर चला जाता है, यहाँ तक कि दो-एक दिन बाहर बिताकर फिर घर लौटता है, और कुछ पैदा करके लाता

नहीं। पतिके लक्षण अच्छे न देखे तो वह भी कुछ ज्यादती करने लगी। उसने जब-है-तब पनघट जाना शुरू कर दिया; और मुहल्ले-भरमें घूम-फिरकर घर आकर काशीप्रसादके मझले लड़केकी बहुत ज्यादा व्याख्या करने लगी।

छदामीके दिन और रातोंमें मानो किसीने जहर घोल दिया। काम-धन्धेमें कहीं भी उसे घड़ी-भरके लिए चैन न पड़ता। इसके लिए एक दिन उसने भौजाईको बड़ी डाट-फटकार बताई। जवाबमें भौजाईने हाथ हिला-हिलाकर झमक-झमककर अनुपस्थित मृत पिताको सम्बोधन करके कहा—"वह औरत आँधीके आगे दौड़ती है, उसे मैं सम्हालूँ! मैं तो जानती हूं, किसी दिन वो खानदानकी नाक कटा बैठेगी!"

बगलकी कोठरीमें चन्दा बैठी थी, उसने बाहर आकर धीरेसे कहा—"जीजी, तुम्हें इतना डर क्यों है?" बस, फिर क्या था, दोनोंमें खूब ठन गई।

छदामीने आँखें घुमाकर कहा—"देख, अबकी अगर सुना कि तू अकेली पानी भरने गई है, तो तेरी हड्डी तोड़ दूंगा।"

चन्दाने कहा—"तब तो मेरा कलेजा ही ठंडा हो जाय!" और कहती हुई वह बाहर जानेको तैयार हो गई।

छदामीने लपककर चोटी पकड़के घसीटकर उसे कोठरीके भीतर ढकेल दिया, और बाहरसे दरवाजा बन्द कर दिया।

शामको छदामी जब घर लौटा, तो देखा कि कोठरी खुली पड़ी है, उसमें कोई भी नहीं! चन्दा तीन गाँव पार करके सीधी अपनी ननसाल पहुंच गई है।

छदामी बड़ी मुश्किलसे मना-मुनूकर वहाँसे उसे घर ले लाया, और अबकी बार उसने अपनी हार मान ली। उसने देख लिया कि जैसे अँजुली-भर पारेको मुट्ठीके अन्दर जोरसे दबाकर रखना दुःसाध्य है वैसे ही इस स्त्रीको भी मजबूतीसे पकड़ रखना असम्भव है; पारेकी तरह वह भी दसो उंगलियोंकी सँधोंमेंसे इधर-उधर छिटक पड़ती है।

उसने किसी तरहकी जबरदस्ती नहीं की, किन्तु बड़ी अशांतिमें रहने लगा। इस चंचला युवती स्त्रीके प्रति उसका वह सदा-शंकित प्रेम उग्र वेदनाकी तरह उसीको दुःख देने लगा। यहाँ तक कि कभी-कभी वह सोचता कि यह मर जाय तो निश्चिन्त होकर जरा शान्तिसे रहूं। आदमीसे आदमीकी जितनी ईर्षा होती है उतनी शायद यमराजसे भी नहीं होती।

इसी बीचमें घरमें यह दुर्घटना हो गई।

चन्दासे जब उसके मालिकने हत्या मंजूर कर लेनेके लिए कहा, तो वह भौंचक्क होकर देखती रह गई। उसकी काली-काली दोनों आँखें काली आगकी तरह चुपचाप अपने पतिको दग्ध करने लगीं। उसका सारा शरीर और मन क्रमशः मानो संकुचित होकर पति-राक्षसके पंजेसे निकल भागनेकी कोशिश करने लगा। उसकी सारी अन्तरात्मा विमुख होकर पतिके खिलाफ विद्रोह ठान बैठी।

छदामीने बहुत तसल्ली दी कि तेरे डरनेकी कोई बात नहीं। इसके बाद उसने, थानेमें और अदालतमें मजिस्ट्रेटके सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा-पढ़ाकर सब ठीक कर दिया। मगर चन्दाने उसकी लम्बी-लम्बी बातें कुछ भी नहीं सुनीं, पत्थरकी मूर्तिकी तरह वह चुपचाप बैठी रही।

सभी कामोंमें दुक्खी छदामीके भरोसे रहता है। छदामीने जब चन्दापर सारा दोष मढ़नेकी बात कही, तो दुक्खोने कहा—"फिर बहूका क्या होगा ?"

छदामीने कहा—"उसे मैं बचा लूँगा।"

भाईकी बात सुनकर हट्टाकट्टा दुक्खी निश्चिन्त हो गया।

३

छदामीने अपनी बहूको सिखा दिया था कि तू कहना, 'जिठानी मुझे हँसिया लेकर मारने आई थी, सो मैं भी उसे हँसिया उठाकर रोकने लगी, सो न-जाने कैसे अचानक लग गई!' ये सब बातें रामलोचनकी बनाई हुई थीं। इसके अनुकूल जिन-जिन वर्णनों और प्रमाणोंकी जरूरत थी वे सब बातें भी उन्होंने विस्तारके साथ छदामीको समझा दी थीं।

पुलिस आकर जोरोंसे तहकीकात करने लगी। लगभग सभी गाँववालोंके मनमें यह बात तह तक बैठ गई थी कि चन्दाने ही जिठानीकी हत्या की है। प्रायः सभी गाँववालोंके बयानोंसे ऐसा ही साबित हुआ। पुलिसकी तरफसे जब चन्दासे पूछा गया तो चन्दाने कहा—"हाँ, मैंने ही खून किया है।"

"क्यों खून किया ?"

"मुझे वह सुहाती नहीं थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था ?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी ?"

"नहीं।"

"तुमपर किसी तरहका जुल्म किया था ?"

"नहीं ।"

इस तरहका जवाब सुनकर सब दंग रह गये।

छदामी एकदम घबरा गया। बोला—"वह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू..."

दारोगाने बड़े जोरसे डाटकर उसे चुप कर दिया। अन्त तक बार-बार नियमानुसार जिरह करनेपर भी, वही एक ही तरहका जवाब मिला, बड़ी बहूकी तरफसे किसी तरहका हमला होना चन्दाने किसी भी तरह मंजूर नहीं किया तो नहीं ही किया।

ऐसी अपनी जिदकी पक्की औरत शायद ही कहीं देखनेमें आती हो। एक रुखसे जी-जानसे कोशिश करके फाँसीके तख्तेकी तरफ झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती! यह कैसा खतरनाक रूठना है! चन्दा शायद मन-ही-मन कह रही थी, 'मैं तुम्हें छोड़कर अपने इस नवयौवनको लेकर फाँसीके तख्तेपर चढ़ जाऊँगी, फाँसीकी रस्सीको गले लगाऊँगी, मेरे इस जन्मका आखिरी बन्धन उसीके साथ है।'

बन्दिनी होकर चन्दा, एक भोलीभाली छोटी-सी चंचल कौतूहलप्रिय ग्राम-वधू, चिरपरिचित गाँवके रास्तेसे, जगन्नाथजीके मन्दिरके पाससे, बीच बाजारसे, घाटके किनारेसे, मजूमदारोंके घरके सामनेसे, डाकखाना और स्कूलके बगलसे, सभी परिचित लोगोंकी आँखोंके सामनेसे कलंककी छाप लेकर हमेशाके लिए घर छोड़कर चली गई। लड़कोंका एक झुंड पीछे-पीछे चला जा रहा था; और गाँवकी औरतें, उसकी सखी-सहेलियाँ, कोई

घूँघटकी सँधमेंसे, कोई दरवाजेके बगलसे और कोई पेड़की ओटमें खड़ी होकर सिपाहियोंसे घिरी चन्दाको जाती देख लज्जासे घृणासे डरसे रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी-मजिस्ट्रेटके सामने भी चन्दाने अपना ही कसूर कबूल किया। और, दुर्घटनासे पहले बड़ी बहूने उसपर किसी तरहकी ज्यादती या जुल्म किया था—यह बात उसके मुँहसे किसी भी तरह निकली ही नहीं।

पर छदामी उस दिन गवाहीके कठघरेमें पहुंचते ही रो दिया; और हाथ जोड़कर बोला—"दुहाई है हजूर, मेरी बहूका कोई कसूर नहीं।" हाकिमने धमकाकर उसके उच्छ्वासको रोककर उससे सवाल करना शुरू कर दिया। उसने एक-एक करके सारी-की-सारी सच्ची वारदात कह सुनाई।

पर, हाकिमने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया। कारण, मुख्य विश्वस्त और शरीफ गवाह रामलोचनने कहा, "खून होनेके थोड़ी देर बाद मैं घटनास्थलपर पहुंचा था। गवाह छदामीने मेरे सामने सब कबूल करके मेरे पैरोंपर गिरकर कहा था कि 'बहूको किस तरह बचाऊँ, कोई रास्ता बताइये।' मैंने भला-बुरा कुछ भी नहीं कहा। गवाहने मुझसे कहा कि 'मैं अगर कहूं कि मेरे बड़े भाईने खानेको माँगा था, सो उसने दिया नहीं, इसपर गुस्सेमें आकर भाईने स्त्रीको मार डाला, तो यह बच जायगी?' मैंने कहा, 'खबरदार, हरामजादे, अदालतमें एक हरूफ भी झूठ न बोलना, इससे बढ़कर महापाप और नहीं है।' इत्यादि।"

रामलोचनने पहले चन्दाको बचानेके लिए बहुत-सी बातें गढ़

डाली थीं, किन्तु जब देखा कि चन्दा खुद ही अड़कर फँस रही है, तब सोचा कि 'अरे बाप रे, अन्तमें जाकर मुझे ही झूठी गवाहीके जुल्ममें न पड़ना पड़े! इससे जितना जानता हूं उतना ही कहना अच्छा।' यह सोचकर उन्होंने उतना ही कहा; बल्कि उससे भी कुछ ज्यादा कहनेमें कसर न रखी।

डिप्टी-मजिस्ट्रेटने मामला सेशन सुपुर्द कर दिया।

इस बीचमें खेती-बारी, हाट-बाजार, रोना-हँसना आदि संसारके सभी काम चलने लगे। पहलेकी तरह फिर हरे धानके खेतोंमें सावनकी वर्षाधारा झरने लगी।

पुलिस मुलजिम और गवाहोंको लेकर सेशन-जजकी अदालतमें हाजिर हुई। इजलासमें बहुतसे लोग अपने-अपने मुकदमेकी पेशीकी इन्तजारीमें बैठे हैं। रसोई-घरके पीछेकी एक छोटी-सी गन्दी तलैयाके कुछ हिस्सेको लेकर एक मामला चल रहा है, जिसकी पैरवीके लिए कलकत्तासे वकील बुलाये गये हैं, और फरियादीकी तरफसे उनचालीस गवाहियाँ हाजिर हैं। सब अपने-अपने हक-हिसाबका कौड़ी-कड़ी रत्ती-रत्ती बालकी खाल निकालनेवाला फैसला करानेके लिए व्याकुल होकर दौड़े आये हैं, उनकी धारणा है कि फिलहाल उनके लिए इससे बढ़कर संसारमें और-कोई जरूरी काम नहीं है। छदामी खिड़कीमेंसे रोजमर्राकी इस अत्यन्त आकुल-व्याकुल दुनियाकी तरफ एकटक देख रहा है; सब-कुछ उसे सपना-सा मालूम होता है। अदालतके अहातेके भीतरके वटवृक्षपरसे एक कोयल बोल रही है; उनके यहाँ किसी तरहका आईन-कानून और अदालत नहीं है।

चन्दाने जजके सामने झुंझलाकर कहा—"अरे साहब, एक ही बातको बार-बार कितनी बार बताऊँ !"

जजने उसे समझाकर कहा—"तुम जिस कसूरको मंजूर कर रही हो, उसकी सजा क्या है, जानती हो ?"

चन्दाने कहा—"नहीं ।"

जजने कहा—"उसकी सजा है फाँसी, मौत !"

चन्दाने कहा—"साहब, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे वही सजा दो ; मुझसे अब सहा नहीं जाता ।"

जब छदामीको अदालतमें पेश किया गया, तो चन्दाने उसकी तरफसे मुँह फेर लिया । जजने कहा—"गवाहकी तरफ देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है ?"

चन्दाने दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढककर कहा—"वह मेरा मालिक लगता है ।"

सवाल—"तुम्हें यह चाहता है ?"

जवाब—"ऊऽफ् ! बहुत ज्यादा चाहता है कि !"

सवाल—"तुम उसे नहीं चाहतीं ?"

जवाब—"बहुत ही ज्यादा चाहती हूं कि !"

छदामीने सवालका जवाब देते हुए कहा—"मैंने खून किया है ।"

सवाल—"क्यों ?"

जवाब—"खानेको माँगा था, सो उसने दिया नहीं ।"

दुक्खी गवाही देने आया तो वह मूर्छित हो गया । होश आनेपर उसने जवाब दिया—"साहब, खून मैंने किया है ।"

"क्यों ?"

"खानेको माँगा था, सो उसने दिया ही नहीं।"

बहुत जिरह करके तथा और-और गवाहोंका बयान सुनकर जज साहबने साफ-साफ समझ लिया कि घरकी बहूको फाँसीकी बेइज्जतीसे बचानेके लिए ही दोनों भाई कसूर मंजूर कर रहे हैं। पर चन्द्रा थानेसे लेकर सेशन-अदालत तक बराबर एक ही बात कहती आ रही है, उसकी बातमें जरा भी कहीं फर्क नहीं पड़ा। दो वकीलोंने स्वतःप्रवृत्त होकर उसे फाँसीसे बचानेके लिए बहुत कुछ कोशिश की, लेकिन अन्तमें उन्हें भी हार माननी पड़ी।

जिस दिन जरा-सी उमरमें एक काली-काली छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मटोल मुँह लिये गुड्डा-गुड्डिया फेंककर बाप-महतारीका घर छोड़कर सुसराल आई थी, उस दिन रातको शुभ-लग्नके समय आजके इस दिनकी कौन कल्पना कर सकता था? उसका बाप मरते समय यह कहकर निश्चिन्त हुआ था कि 'खैर, कुछ भी हो, मेरी लड़की तो ठीक-ठिकानेसे लग गई।'

जेलखानेमें फाँसीके पहले मेहरबान सिविल सर्जन साहबने चन्द्रासे पूछा—"किसीको देखनेकी मनमें है?"

चन्द्राने कहा—"एक बार अपनी माको देखना चाहती हूं।"

डाक्टरने कहा—"तुम्हारा मालिक तुम्हें देखना चाहता है, उसे बुलवा लिया जाय?"

चन्द्रा बोली—"हुंःह्, मौत भी न आई!"

महात्मा गान्धी

भारतवर्षकी अपनी एक पूरी भौगोलिक मूर्ति है। पुराने जमानेमें देश मनसे चाहता था कि उसमें पूर्वप्रान्तसे लेकर पश्चिमप्रान्त तक, उत्तरमें हिमालयसे लेकर दक्षिणमें कन्याकुमारी तक जो एक सम्पूर्णता या पूरापन है उसकी तसवीर, उसकी प्रतिमा, हृदयमें धारण करे। 'महाभारत' में इस उद्यमका स्पष्ट और जाग्रत परिचय मिलता है कि किसी समय देशके मनमें, विभिन्न समय और नाना स्थानोंमें जो-कुछ विच्छिन्न या बिखरा पड़ा है उसे वह इकट्ठा करके देखे; भारतकी भौगोलिक स्वरूपकी उपलब्धि करे। इसका एक तरीका था, एक अनुष्ठान चालू था, वह था तीर्थ-भ्रमण। देशमें पूरबी छोरसे लेकर पश्चिम छोर तक और उत्तरकी चोटीसे लेकर दक्षिण समुद्र तक सर्वत्र इसके पीठस्थान थे, वहाँ तीर्थ थे, और उन तीर्थोंने भक्तिकी एक धारा बहाकर सारे भारतवर्षको मनके भीतर लानेके आसान तरीका चालू कर रखा था।

भारत एक विशाल देश है। प्राचीन कालमें इसको सम्पूर्ण रूपसे मनके भीतर ग्रहण करना मुश्किल था। आज जरीब या सर्वे करके नक्शा बनाकर भूगोलके वर्णनमें गूँथकर भारतवर्षके रूपके विषयमें जिस धारणाको मनमें स्थान देना सहज हो गया है, प्राचीनकालमें वैसा नहीं था। एक हिसाबसे अच्छा था वह। आसानीसे जो मिलता है, मनमें वह तह तक जाकर नहीं पैठता। यही वजह है कि कृच्छ्र-साधन करके,

कायक्लेश और दुःख-कष्ट अंगीकार करके, जो भारतकी परिक्रमा की जाती थी और उससे जो अनुभव प्राप्त होता था वह बहुत ही गहरा होता था, और मनसे हटाये नहीं हटता था।

'महाभारत'के बीचमें 'गीता' प्राचीनके उस समन्वय-तत्त्वको उज्ज्वल किये हुए है। कुरुक्षेत्रके केन्द्रस्थलमें यह जो थोड़ी-सी दार्शनिक रूपमें चरचा की गई है, इसे काव्यकी दृष्टिसे असंगत कहा जा सकता है, और ऐसा भी कहा जा सकता है कि मूल 'महाभारत'में यह नहीं थी। बादमें जिन्होंने बिठाया है वे जानते थे कि उदार काव्य-परिधिके भीतर, भारतकी चित्तभूमिके बीचमें इस सार-तत्त्वकी अवतारणा करना आवश्यक है। सारे भारतवर्षको भीतर और बाहरसे उपलब्धि करनेका प्रयास चालू था धर्मानुष्ठानके भीतर-ही-भीतर। 'महाभारत' पढ़ना जो हमारे देशमें धर्म-कर्ममें शामिल हुआ सिर्फ तत्त्वकी दिशामें ही उसकी उपयोगिता हो, सो बात नहीं, बल्कि देशकी उपलब्धि करानेके लिए भी उसकी कार्यकारिता काफी है। और तीर्थ-यात्रियोंने भी लगातार चारों तरफ घूम-फिरकर, देशका बार-बार स्पर्श करके, अत्यन्त अन्तरंग रूपसे क्रमशः इसकी एकरूपताको मनमें स्थान देनेकी कोशिश की है।

यह हुई पुराने जमानेकी बात।

अब जमाना बिलकुल बदल गया है। आज देशके आदमी अपने प्रादेशिक कोनोंमें, संकीर्णताके बीच, कैद रहना चाहते हैं। संस्कार और लोकाचारके जालमें हम बुरी तरह फँस गये हैं; किन्तु 'महाभारत'के प्रशस्त क्षेत्रमें एक तरहकी मुक्तिकी हवा

है। उस महाकाव्यके विशाल प्रांगणमें मनस्तत्त्वकी कितनी परीक्षाएँ हुई हैं, कोई ठीक है ! जिसे हम साधारणत: निन्दनीय कहते हैं उसे भी वहाँ जगह मिल गई है। अगर मन हमारे तैयार हों, तो दोष-त्रुटि और अपराध सबको पार करके 'महाभारत' की वाणीको हम जरूर समझ सकते हैं। 'महाभारत'में एक उदात्त शिक्षा है; वह ना-अर्थक नहीं, सद्-अर्थक है, यानी उसमें एक 'हाँ' है। बड़े-बड़े वीर-पुरुष जो अपने माहात्म्यके गौरवसे उन्नत-मस्तक हैं, उनमें भी दोष-त्रुटियाँ हैं, किन्तु उन दोष-त्रुटियोंको खुद पीकर ही वे बड़े हुए हैं। मनुष्यके विषयमें यथार्थ रूपसे विचार करनेकी महान शिक्षा हमें 'महाभारत'से मिलती है।

पाश्चात्य संस्कृतिके साथ हमारा सम्बन्ध होनेके बादसे और भी कुछ विचारणीय विषय आ गये हैं जो पहले नहीं थे। प्राचीन कालके भारतमें देखा जाता है कि स्वभावसे या कार्यसे जो अलग हैं उन्हें अलग श्रेणीमें बाँट दिया गया है। फिर भी, खंडित हो जानेके बाद भी, उनमें एकता-साधनकी प्रचेष्टा थी। सहसा पश्चिमके सिंहद्वारको भेदकर शत्रुका आगमन हुआ। आर्योंने उसी मार्गसे आकर एक दिन पंचनदीके किनारे उपनिवेश कायम किया था; और उसके बाद बिन्ध्याचल पार करके धीरे-धीरे वे सारे भारतमें फैल गये थे। भारत तब गान्धार आदि आस-पासके प्रदेशों सहित एक समग्र संस्कृतिमें घिरा रहनेसे उसपर बाहरकी चोट नहीं लगी। उसके बाद एक दिन आया जब कि बाहरके संघातसे हम न बच सके। वह संघात थे विदेशी; उनकी

संस्कृति हमसे जुदा थी। जब वे यहाँ आये तब देखा गया कि हम एकसाथ थे, किन्तु एक नहीं हुए। इसीसे सारे भारतवर्षमें विदेशी आक्रमणकी एक बाढ़-सी बह गई।

उसके बादसे हमारे दिन कटने लगे दुःख और अपमानकी ग्लानिमें। विदेशी आक्रमणमें, जिसको जैसा मौका मिला, कितने ही एक दूसरेके साथ मिलकर अपना-अपना प्रभाव फैलानेमें जुट गये तो कितने ही अलग-अलग जगहोंसे खंड-खंड और विशृङ्खल रूपसे विदेशियोंको बाधा देने लगे, अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए। पर किसीको भी किसी भी तरह सफलता नहीं मिली। राजपूताना, महाराष्ट्र और बंगालमें लड़ाई बहुत दिनों तक शान्त नहीं हुई। इसका कारण यह कि जितना बड़ा देश था उतनी बड़ी एकता नहीं हुई; दुर्भाग्यके भीतरसे हमने जानकारी तो हासिल की, किन्तु सदियों बाद। विदेशी हमलावरोंके लिए रास्ता साफ हो गया हमारी इस अनेकताके सूराखसे। हमारे नजदीकी दुश्मनपर एकसाथ भड़भड़ाकर आ पड़े समुद्र पारके विदेशी दुश्मन, वाणिज्य-जहाज लिये हुए; पुर्तगीज आये, ओलन्दाज आये, अंगरेज आये। सबने आकर जोरके धक्के लगाये; और देख लिया कि यहाँ ऐसी कोई चहारदीवारी नहीं जो लाँघी न जा सके। हम अपनी सम्पदा शक्ति सब-कुछ देने लगे; हमारे अन्दर कमजोरी आई, मनोबलकी दिशामें भी हम पूंजी खो बैठे, बिलकुल रीते-खोखले हो गये हम। बाहरकी दीनता ऐसे ही भीतर दीनता ला देती है।

ऐसे बुरे दिनोंमें हमारे साधक पुरुषोंके मनमें जिस

चिन्ताधाराका स्रोत बह रहा था वह थी परमार्थकी ओर लक्ष्य रखकर भारतकी स्वाधीनताको उद्बोधित करनेकी आध्यात्मिक अचेष्टा। तबसे हमारा सम्पूर्ण मन चल दिया है पारमार्थिक पुण्य-उपार्जनकी ओर। वहाँ तक हमारा पार्थिव वैभव पहुंचा ही नहीं जहाँ यथार्थ दीनता थी और सच्ची शिक्षाकी कमी थी। पारमार्थिक पूँजी पानेके लोभसे जिस पार्थिव पूँजीको हम खर्च करते हैं वह पड़ती है जाकर महन्त और पुजारी-पंडोंके गर्वसे फूले हुए पेटमें; इससे, सिवा क्षयके, देशकी जरा भी बढ़वारी नहीं होती।

इस विशाल भारतवर्षके विराट जनसमाजमें और भी एक श्रेणीके लोग हैं जो जप-तप ध्यान-धारणा करनेके लिए मनुष्यको त्यागकर, घर-गृहस्थीको गरीबी और दुःखके हाथ सौंपकर, परमार्थ साधने चल देते हैं। इन असंख्य उदासीनोंके लिए, इन मोक्ष-कामियोंके जीनेके लिए, अन्न वे ही जुटाते हैं जो इनके मतसे मोहग्रस्त और संसारासक्त हैं। एक बार किसी गाँवमें ऐसे ही एक संन्यासीके साथ मेरी भेंट हो गई थी। मैंने कहा, 'गाँवमें जो दुराचारी दुःखी रोगी वगैरह हैं उनके लिए आप कुछ करते क्यों नहीं?' मेरी बात सुनकर वे बोले, 'क्या कहा! जो सांसारिक मोहग्रस्त प्राणी हैं उनके लिए सोचना होगा हमें! हम ठहरे साधक, विशुद्ध आनन्दके लिए घर-संसार छोड़कर दीक्षा ली है, अब फिरसे हम उस जंजालमें फँस जायँ!' यह बात जिन्होंने कही थी उन्हें, और उन-जैसे अन्य सभी संसारसे उदासीन संन्यासियोंको बुलाकर यह पूछनेकी इच्छा होती है कि 'महात्मन्,

आपके इस पार्थिव शरीरको हृष्टपुष्ट और चिकना बनाये रखनेके लिए 'भोग' कौन जुटाता है ?' जिन्हें वे पापी और हेय समझकर त्याग आये हैं, आखिर वही संसारी जीव ही तो उनके लिए खूराक जुटाते हैं। लगातार परलोककी ओर देखते-देखते हम अपनी शक्तिका कितना फजूल-खर्च करते हैं इसका कोई ठिकाना है ! सदियोंसे भारतकी यह कमजोरी पनपती आ रही है। इसकी जो सजा है, इस लोकके विधाताने वह सजा हमें दी है। उन्होंने हमें आदेश दिया है कि अपनी सेवासे, अपने त्यागसे हमें इस लोकके काबिल बनना होगा। उस आदेशकी हमने बेकदरी की है, लिहाजा उसकी सजा हमें भुगतनी ही पड़ेगी।

आजकल यूरोपमें स्वाधीनताकी प्रतिष्ठाके लिए उद्यम चल रहा है। इटलीने किसी समय विदेशियोंके पंजेमें फँसकर धिक्कृत जीवन बिताया था; अन्तमें, इटलीके जो त्यागी थे, वीर थे, मैजिनी और गैरिबाल्डीने विदेशियोंके अधीनता-पाशसे छुड़ाकर अपने देशको स्वाधीन बनाया। अमेरिकाके युक्तराष्ट्रके लिए भी देखा गया है कि स्वाधीनताकी रक्षा करनेके लिए उसे कितना दुःख, कितना उद्यम और कितना संग्राम करना पड़ा है। आदमीको आदमीके काबिल हक देनेके लिए पाश्चात्य देशोंमें कितनोंने अपनी बलि दी है, यह छिपा नहीं है। भेद डालकर परस्परका जो अपमान किया जाता है उसके खिलाफ पश्चिमी देशोंमें आज भी विद्रोह चालू है। उन देशोंमें जनसाधारण, सर्वसाधारण, मानवीय गौरवके अधिकारी हैं; और इसीलिए राष्ट्र-तंत्रका सारा अधिकार सर्वसाधारणमें व्याप्त है। वहाँ कानूनके आगे अमीर और गरीबमें,

ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद नहीं। एकतामें गुंथकर स्वाधीनता कायम करनेकी शिक्षा हमें पाश्चात्यके इतिहाससे मिली है। और, सब भारतवासी मिलकर अपने देशका शासन-तंत्र आप चलावें इस बातकी इच्छा भी हममें पाश्चिमको देखकर पैदा हुई है। इतने दिनोंसे हम अपने गाँव और पड़ोसियोंको लेकर खंड-खंड रूपसे छोटी-छोटी परिधिके भीतर काम करते आये थे और उसीके अनुरूप हमारी विचारधारा भी थी। गाँवोंमें कुए ताल और मन्दिर बनवाकर हमने अपनेको सार्थक समझा, और उन गाँवोंको ही जन्मभूमि या मातृभूमि माननेका हमें कभी मौका ही नहीं मिला। प्रान्तीयताके जालमें फँसकर और अपनी मानसिक कमजोरियोंसे बेबस होकर हम जब पड़े ऊंघ रहे थे, तब रानाडे, सुरेन्द्रनाथ, गोखले प्रमुख महापुरुष आये और उन्होंने जन-साधारणको गौरव देना शुरू कर दिया। उनके द्वारा शुरू की गई साधनाको आज जो अपनी प्रबल आत्म-शक्तिसे खूब तेजीके साथ आश्चर्यजनक सिद्धिकी ओर बढ़ाते ले जा रहा है, आज हम यहाँ उसी महात्माकी बात सोचनेके लिए इकट्ठे हुए हैं, वे हैं महात्मा गान्धी।

लोग पूछ सकते हैं, 'पहले-पहले क्या ये ही आये हैं? इनके पहले क्या कांग्रेसके भीतर रहकर औरोंने बहुत-से काम नहीं किये?' बेशक बहुतोंने बहुत-कुछ किया है, पर उनके नाम लेते ही हम देखेंगे कि कितना म्लान था उनका साहस, कितना क्षीण था उनका कंठ।

पहलेके कांग्रेस-जन शासकोंके पास कभी ले जाते थे

प्रार्थनाकी डाली और कभी दिखाते थे नाराजीका झूठा डर। वे समझते थे कि कभी तीखे-तेज और कभी मीठे-मधुर वाक्य-बाण छोड़कर आसानीसे मैजिनी और गैरिबाल्डीके समगोत्रीय बना जा सकता है। उस दिनकी क्षीण और अवास्तव शूर-वीरताको लेकर आज हम गौरव-गान करें तो उसमें क्या पड़ा है। आज जो आये हैं वे राष्ट्रीय स्वार्थके कलुषसे मुक्त हैं, मानवमें वे महात्मा हैं।

राष्ट्रतंत्रके अनेक पाप और दोषोंमेंसे एक सबसे बड़ा पाप या दोष है उसमें स्वार्थ ढूंढ़ना, मतलब गाँठनेकी फिराकमें रहना। राष्ट्रीय स्वार्थ बहुत बड़ा स्वार्थ है तो हुआ करे, फिर भी, स्वार्थकी जो गंदगी है वह उसमें आये बगैर रह ही नहीं सकती। 'पॉलिटिशैन' (राजनीति-जीवी) नामकी एक जात है, उनके आदर्शका महान आदर्शके साथ मेल नहीं बैठता। वे ज्यादासे ज्यादा झूठ बोल सकते हैं; और इतने ज्यादा ईर्षा और हिंसामय होते हैं कि अपने देशको स्वाधीनता देनेके बहाने दूसरे देशोंपर अधिकार जमानेका लोभ नहीं छोड़ सकते। पाश्चात्य देशोंमें यही देखा गया है कि एक तरफ तो वे देशके लिए प्राण तक दे सके हैं और दूसरी तरफ देशके नामपर अनाचारोंको बढ़ावा देनेमें भी कोई कसर नहीं रखते।

पाश्चात्य देशोंने किसी दिन जिस मूसलको जना था, आज उसकी शक्ति यूरोपके सरपर पड़नेको तैनात खड़ी है। आज ऐसी हालत हो गई है कि सन्देह होता है, आजकी यूरोपीय सभ्यता कल तक टिकेगी या नहीं। वहाँवाले जिसे पेट्रियॉटिज़्म (देशभक्ति)

कहते हैं वही पेट्रियॉटिज़्म ही उन्हें मारकर खतम कर देगी। वे जब मरेंगे, तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारी तरह चुपचाप निर्जीवकी भाँति नहीं मरेंगे, बल्कि भयङ्कर आग भड़काकर, एक भीषण प्रलय लाकर, उसमें मरेंगे।

हमारे अन्दर भी असत्य आ गया है, झूठ समा गया है; दलबन्दीका जहर फैला दिया है उन लोगोंने जो पॉलिटिशैन जातके हैं। आज उस पॉलिटिक्स (राजनीति) ने विद्यार्थियों तकमें दलबन्दीका जहर घुसा दिया है। ये राजनीति-जीवी 'कामके आदमी' ठहरे; वे समझते हैं कि काम हासिल करनेके लिए 'झूठ'की जरूरत पड़ती है; लेकिन अफसोस बस इतना ही है कि विधाताके विधानमें वह छल-चतुराई पकड़ाई देगी ही। राजनीति-जीवियोंकी, उनकी नाना छल-चतुराइयोंके लिए, हम तारीफ कर सकते हैं, किन्तु भक्ति नहीं कर सकते। भक्ति कर सकते हैं महात्माकी, जिनमें सत्यकी साधना है। झूठके साथ मिलकर उन्होंने सत्यकी सार्वभौमिक धर्मनीतिको अस्वीकार नहीं किया। भारतकी युग-साधनामें यह एक परम सौभाग्यका विषय है। इस एक आदमीने, जिसने सत्यको हर हालतमें माना है, उससे अभी कुछ नतीजा या सहूलियत मिले चाहे न मिले, इसमें सन्देह नहीं कि इस एक आदमीने आदमीके आगे ऐसा एक दृष्टान्त रख दिया है जो महान् है, शाश्वत है।

जगतमें स्वाधीनता और स्वाधीनता प्राप्त करनेका इतिहास सर्वत्र ही खूनकी धारासे कलुषित और गन्दा है, अपहरण और डाकेजनीसे कलंकित है। महात्मा गान्धी ही एक ऐसे साहसी

वीर पुरुष हैं जिन्होंने आदमीको ऐसा एक प्रशस्त और मानवी मार्ग दिखाया कि जिसमें बगैर खून-खराबीके, बिना हत्याकाण्डके भी स्वाधीनता हासिल की जा सकती है। लोगोंने लोगोंको चूसा है, पीसा है, हड़पा है; और विज्ञानने की है देशके नामपर डाकेजनी। देशके नामपर ऐसे कृत्योंके लिए आज जो उनमें गौरव है वह हरगिज टिक नहीं सकता। हमारे अन्दर ऐसे आदमी बहुत ही कम हैं जो हिंसाको मनसे दूर करके कुछ देख सकते हैं। क्या हम इस बातको मनसे मानते हैं कि हिंसा-प्रवृत्तिको अंगीकार किये बिना भी हम विजयी हो सकते हैं? महात्मा अगर बाहुबली योद्धा होते या रणक्षेत्रमें संग्राम करते, तो हम इस तरह आज उनका स्मरण नहीं करते। कारण, युद्ध जीतनेवाले वीर पुरुष और बड़े-बड़े सेनापति संसारमें अनेक पैदा हुए हैं और होते रहेंगे। मनुष्यका युद्ध है नैतिक युद्ध, धर्म-युद्ध। धर्म-युद्धके भीतर भी निष्ठुरता है, इस बातका परिचय हमें 'गीता' और 'महाभारत'में मिलता है। उसमें बहुबलके लिए भी स्थान है या नहीं, इस विषयको लेकर मैं बहस नहीं छेड़ना चाहता। किन्तु, यह जो एक अनुशासन है कि मरेंगे पर मारेंगे नहीं, और ऐसे ही विजयी होंगे, यह बड़ी भारी बात है, एक महान् वाणी है। यह चतुराई या मतलब हासिल करनेका वकीली पेंच-परामर्श नहीं है। धर्म-युद्ध बाहरी जीत जीतनेके लिए नहीं होता, वह तो हारकर भी जीतनेके लिए होता है। अधर्म-युद्धमें मरना मरना कहलाता है। धर्म-युद्धमें मरनेके बाद भी बहुत-कुछ बाकी रह जाता है, हारको पार करके मिलती है जीत, और मृत्युको पार

करके मिलता है अमृत। जिन्होंने इस सारसत्त्वको अपने जीवनमें उतारकर उसे अन्तरात्मामें मिलाकर एक कर लिया है उनकी बात सुननेको हम मजबूर हैं, उनका कहना हमें मानना ही पड़ेगा।

इसकी जड़में शिक्षाकी एक धारा है। यूरोपमें हमने स्वाधीनता का कलुष और देशप्रेमका विभक्त रूप देखा है, अलबत्ता शुरू-शुरूमें उन्हें इससे बहुत-कुछ लाभ हुआ है, ऐश्वर्य भी मिला है। उन पाश्चात्य देशोंने ईसाई-धर्मको सिर्फ मौखिकरूपसे ही ग्रहण किया है। ईसाई-धर्ममें मानव-प्रेमके बड़े-बड़े उदाहरण हैं; जैसे, 'भगवानने मनुष्य होकर मनुष्यके दुःख पाप सब अपनी देहपर झेले हैं और इस तरह मनुष्यकी उन्होंने रक्षा की है, इसी लोकमें, परलोकमें नहीं।' जो सबसे ज्यादा गरीब हैं उन्हें कपड़ेसे और जो भूखे हैं उन्हें अन्नसे मदद करना ही चाहिए, यह बात ईसाई-धर्ममें जितनी साफ-साफ कही गई है उतनी शायद ही कहीं कही गई हो।

महात्माजी ऐसे ही एक ईसाई साधकके साथ मिल सके थे जो मनुष्यके न्यायपूर्ण अधिकारको सब तरहकी बाधाओंसे मुक्त करनेके लिए ही जिन्दा थे। सौभाग्यसे उस यूरोपीय ऋषि टॉल्सटॉयके पास रहकर महात्मा गान्धीने ईसाई-धर्मकी अहिंसा-नीतिकी वाणीके यथार्थ भावको समझा था। और भी बढ़कर सौभाग्यकी बात यह है कि यह वाणी ऐसे महापुरुषकी थी जिन्होंने संसारके अनेक विचित्र अनुभवोंके परिणाम-स्वरूप इस अहिंसा-नीतिके तत्त्वको अपने चरित्रमें उतारा था। मिशनरी या व्यवसायी प्रचारकोंके मुँहसे मानव-प्रेमके बँधे बोल उन्हें नहीं सुनने पड़े।

ईसाकी वाणीका ऐसा एक महान दान हमें मिलना ही चाहिए था, और वह मिला। मध्ययुगके मुसलमानोंसे भी हमें एक दान मिला है। दादू, कबीर, रज्जब आदि सन्त प्रचार कर गये हैं कि जो निर्मल है, जो मुक्त है, जो आत्माकी सबसे अच्छी चीज है, वह दीवारोंसे घिरे हुए मन्दिर या मस्जिदमें किसी खास बनावटी अधिकारीके लिए पहरेमें बन्द नहीं है; वह बिना किसी भेदभावके सभी आदमियोंके लिए खुली हुई निजी सम्पदा है। युग-युगमें ऐसा ही होता आया है। जो महापुरुष हैं वे सारे संसारके दानको अपने माहात्म्यसे ही ग्रहण करते हैं; और ग्रहण करनेके बाद अपने जीवनमें उतारकर जगतमें उसकी सचाईका प्रकाश चमका देते हैं। अपने माहात्म्यके द्वारा ही पृथु राजाने पृथिवीका दोहन किया था, रत्नोंसे भण्डार भरनेके लिए। असलमें, जो श्रेष्ठ महापुरुष हैं वे सभी धर्म, सभी इतिहास और सभी नीतियोंसे संसारका श्रेष्ठ दान ग्रहण करते ही हैं।

ईसाकी श्रेष्ठ नीति कहती है कि 'जो नम्र हैं वे ही विजय पाते हैं'; और ईसाई राष्ट्र कहते हैं, 'निष्ठुर औद्धत्य और निर्दय बल प्रयोग द्वारा ही विजय हासिल की जाती है।' इनमेंसे किसकी जीत होगी, अभी तक ठीक-ठीक मालूम नहीं हुआ; किन्तु, मिसालके तौरपर, देखनेमें यही आता है कि औद्धत्य और बल-प्रयोगके फलस्वरूप यूरोपमें आज कैसी भयंकर महामारी फैली हुई है।

महात्माने नम्र अहिंसा-नीति ग्रहण की है, और चारों तरफ उसकी विजय फैलती ही चली जा रही है। उन्होंने जिस मानवी

नीतिको अपने सम्पूर्ण जीवनमें उतारकर, उसका जो सत्य-रूप हमारे सामने रख दिया है, उसे हम पूरी तरहसे पाल सकें चाहे नहीं, पर उस नीतिको हमें मानना जरूर पड़ेगा। हमारे मनमें और आचरणमें रिपु* और पापका संग्राम चल रहा है, उसके बावजूद, हमें पुण्यकी तपस्याकी दीक्षा लेनी ही पड़ेगी सत्यव्रती महात्मासे। आजका दिन स्मरणीय दिन है, कारण सारे भारतमें राष्ट्रीय मुक्तिकी दीक्षा और सत्यकी दीक्षा आज एक हो गई है सर्वसाधारणके मनमें। [१९३७ ई०

जन्म-दिन

आज महात्माका जन्म-दिन है; आज हम सब आश्रमवासी मिलके आनन्दोत्सव मनायेंगे। मैं शुरूकी धुन शुरू किये देता हूं।

आजकल ऐसे उत्सव ज्यादातर बाहरी आदतकी चीज बन गये हैं। कुछ छुट्टी और बहुत-कुछ उत्तेजना इन दोनोंसे इनकी देह बनती है। ऐसे चाञ्चल्य और ऊल-फूलमें इन सब उपलक्ष्य उत्सवोंके गहरे तात्पर्यको मनसे ग्रहण करनेका मौका बिखरकर छिन्नभिन्न हो जाता है।

जो भाग्यवान् शुभमुहूर्तमें जन्म लेते हैं वे केवल वर्तमान कालके नहीं होते। उन्हें सङ्कीर्ण वर्तमानकी भूमिकामें रखनेकी कोशिश की जाय तो उसमें वे समा नहीं सकते, और इसलिए उन्हें छोटा करके ही रखना पड़ेगा; इस तरह विशाल कालके विस्तीर्ण पटपर

* रिपु=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य : षड्रिपु।

जो शाश्वत मूर्ति प्रकट होनेवाली है उसे हम खण्डित कर डालते हैं। हम अपने मौजूदा जरूरतके आदर्शके विचारमें उनके महत्त्वको खतम कर देते हैं। महाकालके विशाल पटपर जो चित्र अङ्कित होता है, विधाता उसमेंसे रोजमर्राके जीवनका आत्म-विरोध और आत्म-खण्डनकी अनिवार्य कुटिल और छिन्न-भिन्न रेखाओंको मिटा देते हैं, जो-कुछ आकस्मिक और क्षणभङ्गुर होता है उसे पोंछकर साफ कर देते हैं; जो हमारे प्रणम्य हैं उनकी एक सुदृढ़ और सम्पूर्ण मूर्ति संसारमें चिरन्तन बनी रहती है। जो महापुरुष हमारे समयमें जीवित हैं उन्हें भी उस रूपमें देखनेके प्रयासमें ही ऐसे उत्सवोंकी सार्थकता है।

आजके दिन भारतमें जो राष्ट्रीय विरोध है, हो सकता है कि परसों वह रहे ही नहीं; सामयिक अभिप्राय समयके बहावमें न-जाने कहाँ बिला जायें, कोई ठीक नहीं। मान लो, हमारी राष्ट्रीय साधना सफल हुई है, बाहरकी दिशासे हमारी और-कोई माँग बाकी नहीं रही, भारत आजाद हो गया है, और इतना सब कुछ होते हुए भी, आजके इतिहासका कौनसा आत्म-प्रकाश अपनेको धूल-मिट्टीके खिंचावसे बचाकर सिर ऊँचा किये खड़ा रहेगा, यही खास तौरसे देखने-लायक बात है। इस दृष्टिकोणसे जब हम देखते हैं तो समझ जाते हैं कि आजके उत्सवमें जिन्हें लेकर हम आनन्द मना रहे हैं उनका स्थान कहाँ है, उनकी विशेषता कहाँ है। केवल राष्ट्रनैतिक प्रयोजन-सिद्धिकी कीमतसे उनकी कीमत आँकना जबरदस्त भूल होगी, उन्हें देखनेकी यह दृष्टि ही गलत है; हम उन्हें देखेंगे उनकी उस शक्तिकी महिमाकी उपलब्धि

करके जिस दृढ़ शक्तिके बलपर उन्होंने आज सारे भारतवर्षको प्रबल रूपसे सचेतन कर किया है, बेहोशीकी नींदसे जगाकर सीधा खड़ा कर दिया है। यह शक्ति प्रचंड है, सुदृढ़ है, स्वयंसिद्ध है; उसने आज सारे देशको, उसकी छातीपरसे जगद्दल पत्थर हटाकर, हिला दिया है, जिससे निर्जीव देश आज सजीव हो उठा है; ऐसा लगता है मानो कुछ ही वर्षोंमें भारतका रूपान्तर या जन्मान्तर हो गया हो। इनके आनेके पहले, देश डरसे सिकुड़ा हुआ और सङ्कोचसे मुँह छिपाये पड़ा था; सिर्फ इतना ही था कि दूसरोंकी मेहरबानीके लिए अरजियाँ पेश करना; और नस-नसमें समाई हुई थी अपने प्रति श्रद्धाहीन दीनता।

इससे बढ़कर दुर्गति और दुर्भाग्यकी बात और क्या हो सकती है कि भारतमें बाहरसे आये-हुए जो सिर्फ आगन्तुकमात्र हैं उन्हींका प्रभाव हो बलशाली, और देशके इतिहासके साथ आई हुई युग-प्रवाहित भारतकी अपनी प्राणधारा, अपनी जीवनधारा, वह हो जाय म्लान, बुझी-सी! मानो वह अपनी चीज ही न हो, आकस्मिक और बाहरी चीज हो। सेवाके द्वारा, ज्ञानके द्वारा, मैत्री और प्रेमके द्वारा घनिष्ठरूपसे देशकी उपलब्धि होने देनेमें सचमुच ही हम परदेशी बन गये हैं। मोहसे घिरे-हुए हमारे मनने लगभग मान ही लिया था कि हमारे शासनकर्ता जो हमें शिक्षा दे रहे हैं, तलवार-बन्दूक लिये हुए, वे ही राष्ट्रकी व्यवस्था कर रहे हैं, भारतमें वे ही मुख्य हैं और हम हैं गौण! मोहाविष्ट मनकी इस तरहकी स्वीकृतिने, कुछ दिन पहले तक, हम सबको तामसिकता से जड़बुद्धि कर रखा था। इतनेमें लोकमान्य तिलक जैसे कुछ

साहसी पुरुषोंने प्राणोंकी बाजी लगाकर इस जड़तापर चारों तरफसे कड़ी चोट की, और आत्म-श्रद्धाके आदर्शको जगानेके काममें जी-जानसे जुट पड़े; किन्तु कार्यक्षेत्रमें इस आदर्शका विशालरूपमें प्रबल प्रभावके साथ प्रयोग किया महात्मा गान्धीने। भारतवर्षकी प्रतिभाकी अपनी अन्तरात्मामें अनुभूति करनेके बाद अपनी असाधारण तपस्याका तेज लिये हुए वे उतर पड़े नये युगके गठन-कार्यमें। हमारे देशमें आत्म-प्रकाशका भयहीन अभियान, सत्य-विजयकी निर्भीक युद्धयात्रा, इतने दिनों बाद अपने स्वरूपमें ठीक तौरसे शुरू हुई।

अब तक हमारी नाहिम्मतीके ऊपर अपना किला खड़ा करके विदेशी वणिक हमपर साम्राज्यवाद या हुकूमतका कारोबार चलाते आये हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र और सेना-सामन्तोंको यहाँ पाँव धरनेकी जगह ही नहीं मिलती अगर हमारी नानाप्रकारकी कमजोरियाँ—ईर्षा-द्वेष, स्वार्थ, बदला लेनेकी भावना आदि—उन्हें शरण न देतीं। अपनी पराजयका सबसे बड़ा उपादान हम अपने ही भीतरसे उन्हें देते रहे हैं। हमारी इस अपनी पैदा-की-हुई हारसे छुटकारा पानेका रास्ता दिखाया महात्माजीने; उन्होंने नये वीर्यकी अनुभूतिकी भारतमें एक बाढ़-सी ला दी। अब शासकवर्ग तैयारी कर रहा है हमसे समझौता करनेकी; क्योंकि अहिंसा-सत्यके प्रभावसे आज शासनतंत्रकी गहरी नींव हिल उठी है, हमारी वीर्यहीनतामें जिसकी जड़ है वह नींव। आज हम आसानीसे विश्व-जगतमें अपने स्थानका दावा कर रहे हैं।

इसीसे, आज हमें जानना चाहिए कि जो आदमी विलायत

जाकर गोल-टेबिल सभाकी बहसमें शरीक हुआ है, जिसने खादी और चरखेका प्रचार किया है, जो प्रचलित चिकित्सा-शास्त्र और वैज्ञानिक यंत्रोंमें विश्वास करता है या नहीं करता, उस महापुरुषको इन-सब छोटी-छोटी बातों और कामोंकी चहारदीवारीमें घेरकर हम न देखें। क्योंकि इतना ही उसका सब-कुछ नहीं है; ये सब बातें तो अत्यन्त तुच्छ और बाहरी चीज हैं। अपने समयकी जिन-सब सामयिक घटनाओंसे वे घिरे हुए हैं, उन मामलोंमें त्रुटि-विच्युति भी हो तो हो सकती है, उस विषयमें बहस भी की जा सकती है, किन्तु, 'एह बाह्य'। अपनी त्रुटि-विच्युतियोंको वे खुद ही समझते रहे हैं और सर्वसाधारणके सामने मंजूर भी करते रहे हैं। किन्तु जिस अविचलित निष्ठा और आत्म-विश्वासने उनके सम्पूर्ण जीवनको सुमेरु-सा निश्चल बना दिया है, जिसकी संकल्प-शक्ति अपराजेय है, वह उनकी, उनके साथ ही जन्म लेनेवाली निजी चीज है; कर्णके सहजात कवचसे ही उसकी तुलना की जा सकती है। इस शक्तिका प्रकाश मनुष्यके इतिहासमें चिरस्थायी सम्पदाका प्रकाश है। जरूरतोंवाले संसारमें नित्य-परिवर्तनकी धारा बह रही है; किन्तु हमारे लिए सीखने-जाननेकी बात यह है कि सारी जरूरतोंको पार करके जिस महा-जीवनकी महिमा आज हमारे सामने उद्‌घाटित हुई है, उसीकी हम श्रद्धा करना सीखें, उसके स्वरूपको हम अपनी अन्तरात्माके स्वरूपमें मिलाकर एक कर लें, उसीमें अपनी मुक्तिका दर्शन करें।

महात्माके जीवनका वह आत्म-तेज आज सारे देशमें व्याप्त हो गया है; और वह हमारी म्लानताका मार्जन कर रहा है,

गंदगीको धो-पोंछकर साफ कर रहा है। उनकी वह तेजोदीप्त साधक मूर्ति ही आज महाकालका आसन अधिकार किये हुए है। बाधा-विघ्न और आपत्ति-विपत्तियोंको वे मानते ही नहीं, उनके अपने भ्रमने उन्हें खंडित नहीं किया, सामयिक उत्तेजनाके घेरेमें रहते हुए भी वे उसके ऊपर हैं, उनका मन अप्रमत्त है, सनातन सत्यपर सुदृढ़ और सदाजाग्रत है। ऐसी विशाल चरित्रशक्तिके जो आधार हैं, उनको, उन्हींके जन्म-दिनमें आज हम नमस्कार करते हैं।

अन्तमें मेरा कहना इतना ही है कि पूर्वपुरुषोंकी पुनरावृत्ति करना ही मनुष्य-धर्म नहीं। जीव-जन्तु ही अपने अभ्यास या आदतके टूटे-फूटे घोंसलेको छातीसे चिपटाये पड़े रहते हैं; किन्तु मनुष्य युग-युगमें नई-नई सृष्टिके साथ अपना विकाश और प्रकाश किया करता है, पुराने संस्कार कभी भी किसी कालमें उसे बाँधकर नहीं रख सकते। महात्मा गान्धीने भारतवर्षकी बहु-युगव्यापी अन्धता और मूढ़ आचरणके विरुद्ध जिस विद्रोहको एक तरफसे जगाकर खड़ा कर दिया है उसमें हमारी साधना यही होनी चाहिए कि हम सब तरफसे उसे प्रबल और चिरस्थायी बनानेमें कोई बात उठा न रखें। जाति-भेद, धर्म-भेद, सम्प्रदाय-भेद और मूढ़ संस्कारोंके भँवरमें पड़कर जब तक हम उसके चक्करमें घूमते-भटकते रहेंगे, तब तक किसकी ताकत है कि हमें मुक्ति दे सके! सिर्फ वोटोंकी गिनती और परस्पर एक दूसरेके हकोंका बालकी-खाल-निकालनेवाला हिसाब जोड़कर कोई भी जाति या राष्ट्र दुर्गतिसे अपना उद्धार नहीं कर सकता। जिस जातिकी नींव विघ्न-विरोधोंके आत्मघाती वारोंसे जर्जरित

हुई पड़ी है, जहाँके लोग पोथी-पत्राओंकी टोकनियोंमें कूड़ा-करकट ढोनेमें अपना गौरव समझते हैं और विचार-विवेकहीन मूढ़ चित्तसे पुरुषानुक्रमिक पाप-क्षालनके लिए विशेष मुहूर्तके विशेष जलाशयकी ओर नहानेको दौड़ा करते हैं, जो आप्तवाक्यकी दुहाई देकर आत्मबुद्धि और आत्मशक्तिकी अवमाननाको प्यारसे पालते-पोसते रहते हैं, वे कभी भी ऐसी साधनाको स्थायित्व और गाम्भीर्यके साथ आगे नहीं बढ़ा सकते जो साधना मनुष्यको भीतर और बाहरसे गुलामीसे छुड़ा सकती है और जिसके द्वारा स्वाधीनताके दुरूर दायित्वको समस्त शत्रुओंके हाथसे दृढ़शक्तिके साथ बचाया जा सकता है। हमें याद रखना चाहिए कि बाहरके दुश्मनोंसे लड़नेमें उतनी शूर-वीरताकी जरूरत नहीं पड़ती जितनी कि अपने भीतरके दुश्मनोंसे लड़नेमें जरूरत पड़ती है; अपने भीतरी शत्रुओंसे जूझनेमें ही मनुष्यकी चरम परीक्षा है। आज जिनके प्रति हम अपनी श्रद्धा अर्पण कर रहे हैं वे ऐसी परम परीक्षामें विजयी हुए हैं; देश अगर उनसे इस दुरूह संग्राममें विजयी होनेकी साधना ग्रहण न कर सका, तो आजके हमारे ये प्रशंसा-वाक्य और उत्सवका आयोजन सब-कुछ व्यर्थ है। हमारी साधना आजसे शुरू होती है। दुर्गम मार्ग हमारे सामने पड़ा है।

शान्ति-निकेतन
१९३२ ई०

कापके खिलाफ

सूर्यके पूर्णग्रास-लग्नमें अन्धकार जैसे क्रमशः धीरे-धीरे सम्पूर्ण दिनपर छा जाता है, ठीक वैसे ही आज मृत्युकी छायाने सारे देशको अच्छन्न कर रखा है। ऐसी सर्वदेशव्यापी उत्कंठा भारतके इतिहासमें पहले कभी नहीं देखनेमें आई, परम शोकमें यही हमारे लिए एक महान् सान्त्वना है। देशके छोटेसे लेकर बड़े तक साधारण और असाधारण सबके हृदयको आजकी इस वेदनाने स्पर्श किया है। जिन्होंने अपनी बहुत दिनोंकी दुःखकी तपस्यामें सारे देशको यथार्थरूपसे और गंभीररूपसे अपना लिया है उन्हीं महात्माने आज हम सबकी तरफसे मरणव्रत ग्रहण किया है।

देशको अस्त्र-शस्त्र सेना-सामन्तों और बाहुबलसे जीतनेवालोंका प्रताप चाहे कितना ही जबरदस्त क्यों न हो, जहाँ देशकी प्राणवान सत्ता है वहाँ उनका प्रवेश हरगिज नहीं हो सकता। देशके हृदय-क्षेत्रमें सूईकी नोकके बराबर भी भूमि जीत सकें, इतनी भी शक्ति नहीं है उनमें। भारतपर अस्त्रके जोरसे कब्जा बहुत बार बहुतेरे विदेशियोंने किया है; यहाँकी जमीनमें उन्होंने अपना झंडा भी गाड़ा है, पर बादमें झंडा मिट्टीमें गिरकर मिट्टीमें ही मिल गया है। अस्त्र-शस्त्रका घेरा डालकर विदेशमें जो अपने अधिकारको स्थायी करनेकी दुराशा मनमें पोषण करते हैं, एक-न-एक दिन, कालके आह्वानसे जब कि उन्हें नेपथ्यमें छिपना पड़ता है, उसी क्षण उनकी कीर्तिका कूड़ा ईंट-पत्थरके भग्न-स्तूपमें दब जाता है। और जो सत्यके बलपर विजयी होते हैं उनका आधिपत्य उनकी आयुको पार करके देशके मर्मस्थानमें सदा विराजा करता है।

देशके सम्पूर्ण चित्तपर जिनका ऐसा अधिकार है उन्होंने समग्र देशकी तरफसे आज और-एक जययात्रा शुरू की है, उस यात्राका मार्ग है चरम आत्मोत्सर्गका मार्ग। आखिर किस दुरूह बाधाको वे दूर करना चाहते हैं जिसके लिए इतनी बड़ी कीमत देनेमें भी वे नहीं सकुचाये?—स्तब्ध होकर आज हमें इसी बातपर विचार करना चाहिए।

हमारे देशमें डरका एक कारण है। जो चीज मानसिक हैं उसे हम बाहरी दक्षिणा देकर सस्ते सम्मानके साथ विदा कर देते हैं। चिह्नको बड़ा मानकर सत्यको छोटा किया करते हैं। आज देशके नेताओंने तय किया है कि देशवासी उपवास करेंगे। मैं कहूंगा कि इसमें कोई दोष नहीं, किन्तु डर है। डर इस बातका कि महात्माजी अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर उसके एवजमें जिस सत्यको प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहे हैं उसकी तुलनामें हमारे काम बहुत ही हलके और बाहरी होकर कहीं हमारी शर्मको और-भी बढ़ा न दें। हमारा यह काम हृदयके आवेगको किसी एक अस्थायी दिनके साधारण दुःखके लक्षणोंसे क्षीण रेखामें चिह्नित करके कर्तव्य चुका डालने जैसी एक दुर्घटना बनकर ही न रह जाय। हम उपवासका अनुष्ठान करेंगे, क्योंकि महात्माजी उपवास कर रहे हैं; किन्तु इन दोनोंके किसी भी अंशको एकसाथ रखकर तुलना करनेकी मूढ़ता भी हममेंसे किसीके मनमें नहीं आनी चाहिए। क्योंकि ये दोनों कतई एक चीज नहीं। उनका उपवास अनुष्ठान नहीं, बल्कि एक वाणी है, एक सन्देश है, चरम भाषाका चरम सन्देश; मृत्यु उनके उस

सन्देशको समग्र भारतमें, सम्पूर्ण विश्वमें, चिरकाल तक घोषित करती रहेगी। उस सन्देशको ग्रहण करना ही अगर हम अपना कर्तव्य समझते हों, तो उसे यथोचित रूपसे सम्पन्न करना होगा। तपस्याके सत्यको तपस्याके द्वारा ही अन्तरात्मामें ग्रहण करना होगा।

आज हमें विचारकर देखना चाहिए कि वे क्या कहते हैं। संसार-भरमें, मानव-इतिहासके आरम्भसे ही हम देखते हैं कि एक गुटके लोग दूसरे दलके लोगोंको अपने नीचे डालकर, उनके ऊपर अपना महल बनाकर, उसकी छतसे अपनी उन्नतिका प्रचार किया करते हैं। अपने दलके प्रभावकी प्रतिष्ठा करते हैं दूसरे दलकी गुलामीपर। मनुष्य बहुत लम्बे अरसेसे यह काम करता आया है; मगर फिर भी कहेंगे कि यह अमानुषिक है। इसीसे, दास-निर्भरताकी नींवपर खड़ा आदमीका यह ऐश्वर्य स्थायी नहीं हो सकता। इससे सिर्फ दासोंकी ही दुर्गति होती हो, सो बात नहीं, प्रभुओंका भी विनाश होता है। जिन्हें हम अपमानित करके पाँवोंके नीचे कुचलते रहते हैं वे ही हमारे आगे कदम रखने देनेमें सबसे बढ़कर बाधक हैं; वे अपने भारी बोझसे हमें पकड़के नीचेकी तरफ खींचे रहते हैं। जिन्हें हम हीन या नीच बनाये रखते हैं वे ही क्रमशः हमें हेय और दीन बना देते हैं। आदम-खोर सभ्यता रोगोंसे जर्जरित होगी ही और मरेगी ही। मनुष्यके देवताका यही विधान है। भारतमें मनुष्योचित सम्मानसे जिन्हें हमने वंचित कर रखा है उनके अगौरव और बेइज्जतीसे हमने सम्पूर्ण भारतवर्षका ही गौरव और इज्जत घटाई है।

भारतमें आज हजारों आदमी जेलमें बन्द हैं। आदमी होकर

जानवरकी तरह वे सताये और लांछित किये जाते हैं। मनुष्यकी यह पहाड़-सी इकट्ठी-हुई अवमानना सारे शासनतंत्रको अपमानित कर रही है, अपने भारी बोझसे उसे अचल किये दे रही है। ठीक इसी तरह, हमने भी बेइज्जती और नफरतके घेरेमें कैद कर रखा है समाजके एक बड़े हिस्सेको। उनकी हीनताका भारी बोझ लादे हम आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। बन्दी-दशा तो सिर्फ जेलकी चहारदीवारीके अन्दर ही नहीं होती, मनुष्यके हकको हड़पना ही तो बन्धन है। बेइज्जतीके बराबर कैद और क्या हो सकती है। भारतमें इस कारागारको हम एक-एक मंजिल करके बराबर बढ़ाते ही चले आ रहे हैं। ऐसे बन्दियोंके देशमें हम मुक्त होना भी चाहें तो कैसे हो सकते हैं? असलमें जो मुक्ति देते हैं वे ही तो मुक्त होते हैं।

आज तक ऐसे ही चलता आ रहा था, ठीकसे हम समझ ही न पाये थे कि कहाँ हमारा पाँव फँसा हुआ है। सहसा भारत आज मुक्तिकी साधनासे जाग उठा। हम प्रतिज्ञा कर बैठे कि हमेशाके लिए विदेशी शासनके शिकंजेमें कसकर मनुष्यको पंगु बनाये रखनेकी इस व्यवस्थाको हम नहीं मानेंगे। ठीक उसी समय विधाताने हमारी आँखोंमें उंगली डालकर दिखा दिया कि हमारे पराजयके अन्धकारपूण गहरे गड्ढे कहाँ हैं। आज देशके मुक्ति-साधक तापसोंको वहीं जाकर रुकना पड़ा जहाँ हमने अँधेरा कर रखा था, उनकी साधना उन्हींके द्वारा बाधा-प्राप्त हुई जिनको हमने नाचीज समझ रखा था। जो छोटे थे उन्हींने आज बड़ोंको कर दिया अकृतार्थ। तुच्छ समझकर जिन्हें हमने मारा है वे ही आज हमें सबसे बड़ी मार मार रहे हैं।

एक आदमीके साथ दूसरे आदमीकी ताकतकी स्वाभाविक कमी-बेशी होती ही है। राष्ट्र-जातियोंके विषयमें भी यही बात है। उन्नतिके रास्तेमें सब-कोई एकसी दूरी तक आगे नहीं बढ़ पाये हैं; और उसीको उपलक्ष्य करके उन पीछे पड़े-हुओंको जब बेइज्जतीकी दुर्लंध्य चहारदीवारी खड़ी करके स्थायीरूपसे पीछे डाल रखा जाता है तभी पाप जमा हो उठता है, और तभी बेइज्जतीका जहर देशके एक अंगसे सारे अंगोंमें फैलता रहता है। इस तरह हमने मनुष्यके सम्मानसे जिन्हें देश-निकाला दे दिया उन्हें हमने हराया है। यहीं हमारी कमजोरी जमकर बैठ गई, और यहीं मिल गया शनिग्रहको घुसनेका सूराख। इसी सूराखसे पराजय घुसी और बार-बार उसने हमें झुकाया। उसके भीतरकी चिनाई रह गई कच्ची, चोट पड़ते ही ढह गई दीवार। समय पाकर जो भेद दूर हो सकता था उसे हमने कोशिशके साथ, समाज-नीतिकी दुहाई देकर, स्थायी बना दिया। इस भेद-बुद्धिके अभिशापसे हमारी राष्ट्रीय मुक्ति-साधना बार-बार व्यर्थ हो रही है।

जहाँ भी एक वर्गकी बेइज्जतीके ऊपर दूसरे वर्गकी इज्जतकी नीवँ जमाई गई है, वहीं भार-सामंजस्य बिगड़ जानेसे संकट आ खड़ा हुआ है। इसीसे समझमें आ सकता है कि साम्यवाद ही मनुष्यका मूल धर्म है। यूरोपमें एक राष्ट्रजातिके अन्दर और-कोई भेद अगर न भी हो, श्रेणीभेद तो है ही। श्रेणीभेदमें सम्मान और सम्पदका बँटवारा समान नहीं होता। इसीसे वहाँ पूँजीपतियोंके साथ कर्मपतियों या मजदूरोंकी अवस्थाका जितना

ही फर्क पड़ता जाता है, उतनी ही उसकी नींव हिलने लगती है। इस असाम्यके भारसे वहाँकी समाज-व्यवस्था आये-दिन बीमार पड़ती रहती है। अगर आसानीसे साम्यकी रक्षा हुई तब तो खैर है, नहीं तो छुटकारेका कोई रास्ता ही नहीं। आदमी जहाँ कहीं भी आदमीको सतायेगा वहीं उसकी सारी-की-सारी मनुष्यता घायल होगी ही होगी; और वह घाव उसे मौतकी ओर ही घसीट ले जायगा।

समाजके भीतरकी इस असमानताकी तरफ, इस नफरत और भेदभावकी ओर, महात्माजी बहुत अरसेसे हमारा ध्यान आकर्षित करते आ रहे हैं। फिर भी, जितनी चाहिए उतनी लगन और कोशिशसे हमने इस दिशामें अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया है। चरखा और खादीकी तरफ हमने ध्यान दिया है, आर्थिक दुर्गतिकी ओर भी हमारी निगाह दौड़ी है, किन्तु सामाजिक पाप मिटानेकी दिशामें हमारी आँखें नहीं खुलीं। इसीलिए आज ऐसे दुःखके दिन हमारे आगे आये। आर्थिक दुःख बहुत-कुछ बाहरसे आया है, उसका रोकना-सम्हालना बहुत ज्यादा मुश्किल नहीं भी हो सकता है; लेकिन जिस पापके ऊपर हमारे सभी शत्रुओंका आश्रय है उसे जड़से उखाड़ फेंकना हमें अखरता है, क्योंकि उसपर हमारा ममत्व है। उस प्रश्रय-प्राप्त पापके खिलाफ आज महात्माजीने चरम युद्धकी घोषणा कर दी है। हमारे दुर्भाग्यसे इस रणक्षेत्रमें उनके शरीरका अन्त भी हो सकता है। लेकिन, इस युद्धकी जिम्मेदारी वे हममेंसे प्रत्येक पर सौंप जायेंगे। अगर उनके हाथसे आज हम सर्वान्तःकरणसे

उस भारको, उस दानको, ग्रहण कर सके, तभी आजका समय सार्थक होगा। इतने बड़े आह्वानके बाद भी जो एक दिन उपवास करके उसके दूसरे दिनसे उदासीन हो जायेंगे, वे दु:खसे दु:खमें ही प्रवेश करेंगे, दुर्भिक्षसे निकलकर दुर्भिक्षमें ही कदम बढ़ायेंगे। इसलिए, हमें चाहिए कि सिर्फ मामूली-सा कायक्लेश करके सत्य-साधनाकी अवमानना हम हरगिज़ न करें, उसके मूलतत्त्वको समझकर आज हम पाप दूर करनेका अन्तरात्मासे व्रत ग्रहण करें।

१९३२ ई०]

महात्माजीका पुण्यव्रत

युग-युगमें कचित्-कभी इस संसारमें महापुरुषका आगमन होता है। हमेशा उनके दर्शन नहीं होते। जब होते हैं तब उसे अपना सौभाग्य ही समझना चाहिए। आज हमारे दु:खोंका अन्त नहीं; इतना पीड़न, इतनी गरीबी, इतने रोग, शोक, ताप हम नित्यप्रति भोग रहे हैं जिनकी हद नहीं; हमारे आगे दु:खोंका पहाड़ जम गया है। फिर भी, सब दु:खोंको लाँघ गया है आजका हमारा आनन्द। जिस धरतीपर हम जिन्दा हैं, घूम-फिर रहे हैं, उसी धरतीपर एक महापुरुष, जिनकी तुलना नहीं, हमें राह दिखाते फिर रहे हैं; उनका जन्म इसी भारतवर्षमें हुआ है जिसमें हम पैदा हुए हैं।

जो महापुरुष हैं वे जब आते हैं, तब उन्हें हम अच्छी तरह पहचान नहीं पाते। क्योंकि हमारे मन डरपोक और मैले होते

हैं, हमारा स्वभाव ढीला होता है, हमारे संस्कार और अभ्यासोंमें कमजोरियाँ भरी रहती हैं। हमारे मनमें वह सहजशक्ति नहीं है जिससे महानको पूरी तरह समझ सकें और ग्रहण कर सकें। बार-बार ऐसा हुआ है कि जो सबसे बड़े हैं उन्हींको हमने सबसे अलग, सबसे दूर, डाल रखा है।

जो ज्ञानी हैं, गुणी हैं, कठोर तपस्वी हैं, उन्हें समझना आसान नहीं; क्योंकि हमारे ज्ञान बुद्धि और संस्कारोंका उनसे मेल नहीं बैठता। परन्तु एक चीजके समझनेमें दिक्कत नहीं होती, वह है प्रेम। जो महापुरुष प्रेमसे अपना परिचय देते हैं उन्हें अपने प्रेमसे हम किसी कदर समझ ही लेते हैं। इसीलिए भारतमें यह एक ताज्जुबकी बात हुई कि अबकी बार हम समझ गये। ऐसा साधारणतः नहीं होता। जो हमारे बीच आये हैं वे अत्यन्त ऊँचे हैं, अत्यन्त महान हैं। फिर भी, हमने उन्हें स्वीकार किया है, उन्हें पहचान लिया है। सबने समझा है कि 'वे हमारे हैं'। उनके प्रेममें ऊँच-नीचका भेद नहीं, मूर्ख-विद्वानका भेद नहीं, अमीर-गरीबका फर्क नहीं। अपना प्यार वे सबको एकसा बाँट रहे हैं। वे कहते हैं, 'सबका कल्याण हो, सबका मंगल हो, सब सुखी हों।' उन्होंने जो-कुछ कहा है वह जबानी जमाखर्च नहीं बल्कि दुःख और वेदनापूर्ण अन्तःकरणका शुभ-आशीर्वाद है। कितना दुःख, कितनी लांछना और कितना अपमान सहा है उन्होंने, जिसकी हद नहीं। उनके जीवनका इतिहास दुःखका इतिहास है। सिर्फ भारतमें ही दुःख भोगा हो और अपमान सहा हो, सो बात नहीं, दक्षिण-अफरीकामें भी इतनी मार सहनी

पड़ी है कि जो उन्हें मौतके किनारे तक घसीट ले गई थी। उनकी यह तपस्या अपने विषय-सुखोंके लिए नहीं बल्कि दूसरोंकी भलाईके लिए है। ःतनी जो मार सही है वह हँसते-हँसते; और उसके जवाबमें उन्होंने कभी जबान तक नहीं हिलाई, कभी गुस्सा तक नहीं हुए।

सब चोटें नतमस्तक होकर ग्रहण की हैं। दुश्मन आश्चर्यसे दंग रह गये हैं उनका धीरज देखकर, महत्त्व देखकर। उनके सब संकल्प सिद्ध हुए, पर जोर-जबर्दस्तीसे नहीं; बल्कि त्यागसे, तपस्यासे और दुःख स्वीकार करके ही वे विजयी हुए हैं। वही महापुरुष आज भारतके दुःखका बोझ अपने दुःखके बलसे दूर करना चाहता है; आज उसका नया पुण्यव्रत शुरू हुआ है।

सबने उन्हें देखा है या नहीं, पता नहीं; लेकिन जानते उन्हें सभी हैं। सभी जानते हैं कि सारे भारतवर्षने कैसी उनकी भक्ति की है; और नाम दिया है 'महात्मा'। आश्चर्य है, कैसे पहचाना सबने! महात्मा बहुतोंको कहा जाता है, पर उसके कोई मानी नहीं। किन्तु इस महापुरुषको जो महात्मा कहा गया है, उसके मानी हैं। जिसकी आत्मा बड़ी है, महान है, वही महात्मा है। जिनकी आत्मा छोटी है, संकुचित है, विषय-भोगोंमें आबद्ध है, धन-दौलत और घर-गृहस्थीके चिन्तामें कैद है, वे दीनात्मा हैं। महात्मा वही है जिसने सबके सुख-दुःखको अपना लिया है, जो सबकी भलाईको अपनी भलाई समझता है। कारण, सबके हृदयमें उसके लिए जगह है और उसके हृदयमें सबके लिए। हमारे शास्त्रोंमें ईश्वरको महात्मा कहा गया है; मर्त्यलोकमें वैसे

दिव्य प्रेमकी विभूति दैवसे ही कचित-कहीं देखनेको मिलती है। ऐसा प्रेम जिनमें प्रकट होता है, उन्हें हम सिर्फ इसी रूपमें जानते हैं कि वे हृदयसे सबको प्यार करते हैं। सम्पूर्ण रूपसे नहीं समझ सकते; क्योंकि उसमें कुछ बाधाएँ हैं। एक तो, हमारा ज्ञान मन्द है और दूसरे, हमारा मन टेढ़ा हो गया है। सत्यको स्वीकार करनेमें कायरता दुबिधा और संशय हमारे मनको ऐसे घेर लेते हैं कि उस व्यूहसे बाहर निकलना हमारे बूतेके बाहर हो जाता है। तीसरे, जो कुछ बिना तकलीफके मान सकते हैं उतनेको ही मानते हैं हम, कठिनको सरकाकर रख देते हैं एक कोनेमें। यही वजह है कि महात्माजीके सबसे बड़े सत्यको हम नहीं अपना सके। यहीं हमने उन्हें मार दिया। वे आये और लौट गये, अन्त तक हम उन्हें ले ही नहीं सके, अपना ही नहीं सके।

ईसाई-शास्त्रमें पढ़ा है कि आचारवान यहूदियोंने ईसाको शत्रु समझकर मारा था। पर मार क्या सिर्फ देहकी ही होती है? जो प्राण देकर कल्याणका रास्ता खोलने आते हैं, उनके उस रास्तेमें रोड़े अटकाना, यह भी क्या मार नहीं है? सबसे बड़ी मार तो यही है। कितनी जबरदस्त पीड़ा और असह्य वेदनाका अनुभव करके आज उन्होंने मरणव्रत ग्रहण किया है। उस व्रतको अगर हम स्वीकार नहीं कर लेते, तो क्या हम उन्हें नहीं मार देते? हमारे छोटे मनका संकोच और कायरता क्या आज भी नहीं शरमायेगी? हम क्या उनकी वेदनाको अपने मर्मस्थलमें ठीक जगहपर अनुभव नहीं कर सकेंगे? नहीं ग्रहण कर सकेंगे उनके सौंपे-हुए भारको, उनके दिये-हुए दानको? आज अगर हम

डरसे पीछे कदम रखेंगे तो मारे शरमके संसारमें मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे। उन्होंने महाव्रत लिया है छोटे-बड़े सबको एक करनेके लिए। अगर हम सच्चे हैं तो उनका वह साहस उनकी वह शक्ति जरूर आयेगी हमारी बुद्धिमें, हमारे काममें।

हम अकसर यह कहा करते हैं कि विदेशियोंने हमसे दुश्मनी निभाई है। लेकिन, उनसे भी बड़ा दुश्मन मौजूद है हमारी नसोंमें, वह है हमारी कायरता, हमारी भीरुता। उस भीरुतापर विजय पानेके लिए विधाताने एक शक्ति भेजी है महात्माके जीवनके मारफत हमारे लिए; वे अपने अभयसे हमारा भय दूर करने आये हैं। इस कौपीनधारीने घर-घरका दरवाजा खटखटाया है। उन्होंने हमें सावधान कर दिया है कि कहाँ हमारे लिए खतरा है; जहाँ आदमी आदमीकी बेकदरी करता है, अपमान है, आदमीका भगवान वहीं उससे मुंह फेर लेता है। सैकड़ों वर्षोंसे हम इस पापके विषसे भारतकी नाड़ी विषाक्त करते चले आ रहे हैं। इसीसे सारा देश आज कमजोर है, अस्वस्थ है। इसी पापसे आज हम सीधे होकर खड़े भी नहीं हो सकते। अपने चलनेके रास्तेमें हमने कदम-कदमपर दलदलके गड्ढे बना रखे हैं। हमारे सौभाग्यका बहुत-कुछ उन्हींमें डूबा जा रहा है। एक भाई दूसरे भाईके माथेपर अपने हाथोंसे कलंक लेप रहा है। महात्माजीसे सहा नहीं गया यह पाप।

सम्पूर्ण अन्तःकरणसे सुनो उनकी वाणी। और अनुभव करो कि कैसा प्रचण्ड है उनके संकल्पका जोर। आज उस तपस्वीने उपवास शुरू किया है। दिनपर दिन बीतते जायेंगे, पर वे अन्न न खायेंगे। तो क्या हम नहीं देंगे उन्हें अन्न? उनकी वाणीको

ग्रहण करना ही, उनकी बात मानना ही, उन्हें अन्न देना है; उसीसे वे जीयेंगे, उसीसे हम जीयेंगे। कसूर हमने बहुत किये हैं, भाईके साथ दासों जैसा बरताव किया है। उसी ग्लानिके कारण सारी दुनियाके आगे हमने अपनेको छोटा कर लिया है। संसारके अन्य सभी समाजोंको लोग इज्जत देते हैं, क्योंकि वे आपसमें एकताके बन्धनमें बँधे हुए हैं। किन्तु हमारे हिन्दू-समाजके विषयमें बार-बार इस बातका प्रमाण मिल चुका है कि किसीके मनमें डर नहीं है। आखिर किस बिरतेपर वे इतनी हिम्मत करते हैं?

महात्माजी जो इज्जत सबको देना चाहते हैं वही इज्जत हम सबको देंगे। जो नहीं दे सकेगा, धिक् है उसको। भाईको भाई समझकर अपनानेमें जो समाज बाधा देता है, धिक् है उस जीर्ण समाजको। सबसे बड़ी कायरता तभी प्रकट होती है जब सत्यको पहचाननेके बाद भी उसे नहीं मान पाते। ऐसी कायरताके लिए कहीं क्षमा नहीं है।

श्राप इस देशपर बहुत दिनोंसे छाया हुआ है। उसके लिए प्रायश्चित्त कर रहा है एक महाजन। उस प्रायश्चित्तमें हम-सबको शरीक होना होगा, एक होना होगा, और इस मिलनसे ही हमारा चिरमिलन शुरू होगा। अपने प्रायश्चित्तको उन्होंने मृत्युके विशाल पात्रमें रखकर हम सबके आगे बढ़ा दिया है। अपनाओ, अपनाओ, सब मिलकर। धोओ, धो डालो अपने सब पाप। डरो मत, मंगल होगा, कल्याण होगा, भला होगा। आज मैं महात्माकी अन्तिम बात सुनाना चाहता हूं। वे दूर हैं हमसे, फिर भी पास हैं, वे हमारे भीतर हैं और सदा बने रहेंगे।

उन्होंने जो-कुछ चाहा है हमसे, माना कि वह दुरूह दुःसाध्य व्रत है; किन्तु उससे भी दुःसाध्य काम किया है उन्होंने, उससे भी कठिन व्रत धारण किया है उन्होंने। परमात्मासे यही कामना है कि उनके दिये हुए व्रतको हम हिम्मतके साथ ग्रहण कर सकें। जिससे हम डरते हैं वह कुछ भी नहीं; माया है वह, झूठ है, सच नहीं है वह; नहीं मानेंगे हम उसे। बोलो, आज सब मिलकर एककंठ होकर बोलो, 'हम हरगिज नहीं मानेंगे उस झूठको।' बोलो, डर किस बातका? सबके डर-भयको तो वे स्वयं हरण कर बैठे हैं। मृत्यु-भयको जीत लिया उन्होंने। लोक-भय, राज-भय, समाज-भय, कोई भी भय किसी भी हालतमें अब हमें संकुचित नहीं कर सकता। उनके मार्गपर उन्हींके अनुयायी बनकर चलेंगे हम; उनका पराभव, उनकी हार हम हरगिज न होने देंगे। सारी दुनिया आज हमारी ओर देख रही है कि हम क्या करते हैं। जिनके मनमें दया नहीं, दिलमें दर्द नहीं, वे ही आज हमारा मखौल उड़ा सकते हैं। लेकिन याद रहे, इतनी बड़ी बात सचमुच ही मखौलकी बात हो जायगी अगर हमारे ऊपर उसका कोई असर नहीं पड़ा और नतीजा नहीं निकला। सारी दुनिया आज दंग रह जायगी अगर उनकी शक्तिकी आगमें पककर हमारा मन सौ टंचका सोना बन जाय, उनकी आग हम सबके अन्दर जल उठे, अगर हम सब मिलकर एकसाथ बोल उठें, 'जय हो तपस्वी तेरी, तपस्या तेरी सार्थक हो।' हमारी यह जयध्वनि समुद्र पार करके वहाँ तक पहुंच जायगी जहाँके लोग हमारी हालतपर बेरहमीकी मुसकान मुसकरा

रहे हैं; फिर हमारे साथ वे भी मान लेंगे कि सत्यकी वाणी अमोघ है। तब धन्य होगा भारतवर्ष, तब संसार बोल उठेगा, 'हे महात्मा, हे महामानव, हम तुम्हें मानते हैं, तुम्हारे सत्यको मानते हैं।'

हमारा सबसे बड़ा सौभाग्य तब आता है जब 'गैर' अपने हो जाते हैं; और सबसे बड़ा दुर्भाग्य या संकट तब आता है जब 'अपने' गैर हो जाते हैं। जान-बूझकर जिन्हें हमने हरा दिया है, आज हमें समझ-बूझकर ही उन्हें अपने पास बुलाना चाहिए। इससे हमारे कसूरोंका अन्त होगा, पाप धुल जायगा, अमंगल दूर हो जायगा। आओ, आज हम मनुष्यको गौरव देकर मनुष्यत्वका सगौरव अधिकार प्राप्त करें। [१९३२ ई०

व्रत-उद्यापन

गहरी चिन्ता और उद्वेगके साथ, मनमें आशा लिये हुए पूना रवाना हुआ। लम्बा सफर था, जाते-जाते आशंका बढ़ उठी, पहुंचकर न-जाने क्या देखना पड़े। बड़ा स्टेशन आते ही मेरे साथी अखबार खरीद लाते, बड़ी उत्कंठासे मैं उन्हें पढ़ने लगता। कोई अच्छी खबर नहीं पाता। डाक्टरोंका कहना है, महात्माके शरीरकी हालत खतरनाक रास्तेसे गुजर रही है। देहमें मेद या मांसका बचा-खुचा हिस्सा इतना नहीं है कि जिसका क्षय और ज्यादा दिनों तक सहा जा सके, मांसपेशियों तकमें छीजन शुरू हो गई है। एपोप्लेक्सी (मूर्च्छा) होकर अचानक प्राणहानि

हो सकती है। इसके साथ यह भी पढ़ा कि ऐसी हालतमें भी उन्हें प्रतिदिन बहुत देर-देर तक, जटिल समस्याओंके विषयमें, स्वपक्ष और विपक्षके साथ गंभीर आलोचना भी करनी पड़ रही है। आखीरमें जाकर उन्होंने भारतके अनुन्नत समाजको हिन्दू समाजके अन्तर्गत-रूपमें ही राष्ट्रनीतिक विशेष अधिकार दिये जानेके विषयमें दोनों पक्षोंको राजी कर लिया है। देहकी सारी कमजोरी और तकलीफोंको जीतकर उन्होंने असाध्यको साध लिया; अब विलायतसे मंजूरी आने-भरकी देर है, उसीपर सब निर्भर करता है। मंजूर न होनेकी कोई वजह नहीं; क्योंकि प्रधान मंत्रीने जबान दी थी कि अनुन्नत-समाजके साथ एक होकर हिन्दू जो भी तय करेंगे उसे वे भी मान लेंगे। आशा-निराशामें झूलता हुआ मन लेकर छब्बीस सितम्बरको सवेरे हम कल्याण स्टेशन पहुंचे। वहाँ मिलीं श्रीमती वासन्ती और श्रीमती उर्मिला। जरा भी देर न करके उनकी मोटरमें चल दिया पूना।

पूनाका पहाड़ी रास्ता मनोरम है। शहरमें घुसते ही देखा कि फौजी दौड़-धूप चल रही है; बहुत-सी बख्तरबन्द फौजी मोटरें, मशीनगनें और फौजके लोग इधरसे उधर सर-गरमी फैला रहे हैं। अन्तमें श्री विठलभाई ठाकरसी महाशयके घर जाकर उतरा। भीतर घुसते ही देखा कि गंभीर आशंकासे हवा स्तब्ध हो रही है। सबके चेहरेपर दुश्चिन्ताकी छाया है, पूछनेपर मालूम हुआ कि महात्माजीके शरीरकी हालत संकटापन्न है, विलायतसे अभी तक खबर नहीं आई। प्रधान मंत्रीके नाम मैंने भी तुरत एक जरूरी तार भेज दिया। जरूरत नहीं थी भेजनेकी।

तुरत ही कानोंमें भनक पड़ी कि विलायतसे मंजूरी आ गई। पर इस अफवाहको सच साबित होनेमें कई घंटे लग गये।

महात्माजीका मौन-दिवस था आज। एक बजे बाद बात करेंगे। उनकी इच्छा है कि उस समय मैं उनके पास रहूं। जाते जाते यरवदा-जेलसे कुछ दूर पहले ही हमारी मोटर रोक ली गई; अंगरेज सैनिकने कहा, 'कोई भी गाड़ी आगे नहीं जायगी; हुक्म नहीं है।' मैं तो यही समझता था कि कमसे कम आजके दिन तो जेलखानेका प्रवेश-द्वार भारतके लिए खुला ही होगा। गाड़ीके चारों तरफ भीड़ इकट्ठी हो गई। हमारी तरफसे एक आदमी जेलके अधिकारियोंसे मंजूरी लेनेके लिए कुछ आगे बढ़ा ही था कि इतनेमें चिरंजीव देवदास आ पहुंचे, जेलमें घुसनेका प्रवेशपत्र उनके हाथमें था। बादमें सुना कि महात्माजीने उन्हें भेजा था; कारण, उन्हें अचानक ऐसा लगा कि शायद पुलिसने कहीं गाड़ी रोक ली है।

लोहेके फाटक एकके बाद एक खुलते और बन्द होते गये। सामने दिखाई दे रही थी ऊँची चहारदीवारीकी उद्दंडता, कैदी आकाश, सीधी लाइन-शुदा पक्का रास्ता और दो-चार पेड़।

दो बातोंका तजुरबा मेरे जीवनमें बहुत देरसे हुआ है। एक तो, विश्वविद्यालयका फाटक पार हुए मुझे ज्यादा दिन नहीं हुए। दूसरे, जेलखानेमें घुसनेकी हिम्मत न पड़नेपर भी आखीर आज आ ही पहुंचा। कुछ सीढ़ियाँ तय करके दीवारसे घिरे हुए एक आँगनमें पहुंचा। दोनों ओर अलग-अलग कमरोंकी पंक्ति-सी बनी थी। आँगनमें एक छोटे-से आमके पेड़की घनी छायाके नीचे महात्माजी शय्याशायी थे।

शुभ-संवादकी ज्वारमें बहकर आया हूं, इसके लिए अपने भाग्यकी प्रशंसा की मैंने उनसे। करीब तब डेढ़ बजा होगा। विलायतकी खबर भारत-भरमें फैल गई थी ; और बादमें सुना कि राजनीतिक दल तब दलील दस्तावेज लिये शिमलामें बैठे प्रकाश्य सभामें बहस कर रहे थे; अखबारवालोंको भी मालूम हो गया था; किन्तु, जिनके प्राणोंकी धारा प्रतिक्षण क्षीण होकर मृत्यु-सीमासे लगना चाहती है उन्हींका प्राण-संकट दूर करनेके लिए कोई खास जल्दी नहीं है। लम्बे लाल फीतेकी जटिल निर्ममता देखकर दुःख हुआ। सवा-चार बजे तक उत्कंठा प्रतिक्षण बढ़ती ही गई। सुनते हैं, खबर दस ही बजे पूनामें आ गई थी।

चारों तरफ बन्धु-बान्धव और सहकर्मियोंकी भीड़ है। महादेव, वल्लभभाई, राजगोपालाचारी, राजेन्द्रप्रसाद सबको देखा। श्रीमती कस्तूर बाई और सरोजिनीको भी देखा। जवाहरलालकी पत्नी कमला भी मौजूद थीं।

महात्माजीका स्वभावसे ही शीर्ण शरीर शीर्णतम हुआ पड़ा था, गलेकी आवाज लगभग सुनाई नहीं देती। पेटमें अम्ल-पित्त जम गया है, इससे बीच-बीचमें सोडा-शुदा पानी पिलाया जा रहा है। डाक्टरोंकी जिम्मेदारी चरम-सीमा तक पहुंच चुकी है।

फिर भी, आश्चर्य है, चित्त-शक्तिका किञ्चिन्मात्र भी ह्रास नहीं हुआ। चिन्ताकी धारा ज्यों-की-त्यों बह रही है, चैतन्य रत्ती-भर भी नहीं थका। उपवासके पहलेसे ही कितनी दुरूह दुश्चिन्तामें, कितनी जटिल आलोचनामें, उन्हें अहोरात्र डूबा रहना पड़ा होगा जिसकी हद नहीं। समुद्र पारके राजनीतिज्ञोंके साथ

पत्र-व्यवहार करनेमें उनके मनपर कितना कठोर घात-प्रतिघात चला होगा। उपवासके समय नाना दलोंकी जबरदस्त माँगोंने उनकी हालतपर रहम नहीं किया, यह सभी जानते हैं। इतना सब-कुछ होते हुए भी, आश्चर्य है कि उनमें मानसिक जीर्णता या थकानका कोई चिह्न ही नहीं दिखाई दिया। उनके विचारोंकी स्वाभाविक स्वच्छ प्रकाश-धारामें ज़रा भी कहीं मैल-मिट्टी नहीं दिखाई दी। काय-क्लेशकी साधनामेंसे भी उनकी आत्माके अपराजित उद्यमकी इस मूर्तिको देखकर मुझे दंग रह जाना पड़ा। सचमुच, उनके पास बिना गये इस तरह उस स्वरूपकी उपलब्धि ही नहीं कर सकता था कि कितनी प्रचण्ड शक्ति है उस शीर्ण शरीर महापुरुषमें।

आज भारतवर्षके करोड़ों हृदयोंमें पहुंच गई इस मृत्यु-वेदीके नीचे पड़े हुए महान हृदयकी वाणी। कोई भी वाधा उसे रोक नहीं सकी—दूरकी वाधा, ईंट-पत्थरकी वाधा, खिलाफ राजनीतिकी वाधा, कोई भी नहीं। सदियोंकी जड़ताकी वाधा आज उस वाणीके सामने धूलमें मिल गई।

महादेवने कहा कि मेरे लिए महात्माजी एकान्त मनसे प्रतीक्षा कर रहे थे। अपनी उपस्थितिसे मैं राष्ट्रीय समस्याके समाधानमें कुछ सहायता कर सकता हूं, इतना अनुभव और ज्ञान मुझमें नहीं है। उन्हें जो मैं तृप्ति दे सका, यही मेरे लिए परम आनन्दकी बात है।

सब भीड़ करके खड़े रहेंगे तो उन्हें कष्ट होगा, यह समझकर हम सब वहाँसे हटकर इधर-उधर बहुत देर तक इस इन्तजारीमें

बैठे रहे कि अब, आती होगी खबर, अब आती होगी। तीसरा पहर बीत चला, धूप ईंटकी चहारदीवारीपर तिरछी पड़ रही। यहाँ-वहाँ दो-चार शुभ्र-खादी पहने स्त्री-पुरुष शान्त भावसे बैठे बातें कर रहे थे।

ध्यान देनेकी बात है कि कारागारके भीतर हो रहा है यह सब-कुछ। भीतरकी इस जनतामें, किसीके भी किसी बरतावमें प्रश्रय-जनित शिथिलता नहीं। चरित्र-शक्ति विश्वास ला देती है, इसीसे जेलके अधिकारी श्रद्धाके साथ ही इन सबको सम्पूर्ण स्वाधीन-भावसे मिलने-जुलने दे रहे थे। इन लोगोंने महात्माजीके दिये हुए वचनोंके खिलाफ किसी तरहका नाजायज फायदा नहीं उठाया। आत्म-मर्यादाकी दृढ़ता और अचाञ्चल्य इनमें परिस्फुट हो उठा है। देखते ही फौरन समझमें आ जाता है कि भारतकी स्वराज्य-साधनाके योग्य साधक हैं ये।

अन्तमें, जेलके अधिकारी सरकारी छाप-शुदा लिफाफा हाथमें लिये वहाँ आ पहुंचे। उनके चेहरेपर भी आनन्दका आभास पाया गया। महात्माजी गम्भीरताके साथ धीरे-धीरे पढ़ने लगे। मैंने सरोजिनीसे कहा, अब इनके चारों तरफसे हम सबको हट जाना चाहिए। पढ़ चुकनेके बाद महात्माजीने साथियोंको बुलाया। सुना, उनसे उन्होंने ठोंक-बजाकर देख लेनेके लिए कहा। और अपनी तरफसे जताया कि यह चिट्ठी डाक्टर अम्बेदकरको दिखाना जरूरी है; उनका समर्थन पानेके बाद वे निश्चिन्त हो सकेंगे।

पास खड़े-खड़े सबोंने चिट्ठी पढ़ी। मुझे भी दिखाई।

राष्ट्र-बुद्धिकी रचना थी, सावधानीसे लिखी हुई। सावधानीसे ही पढ़ी जाती हैं ऐसी रचनाएँ। समझ गया कि महात्माजीके अभिप्रायके विरुद्ध नहीं है चिट्ठी। पंडित हृदयनाथ कुंजरूपर भार दिया गया कि चिट्ठीके वक्तव्यका विश्लेषण करके वे महात्माजीको सुनायें। उनकी प्रांजल व्याख्यासे महात्माजीके मनमें फिर कोई संशय नहीं रह गया। उपवास-व्रतका उद्यापन हुआ।

दीवारके पास छायामें महात्माकी शय्या उठा लाई गई। चारों तरफ जेलके कम्बल बिछाकर सब बैठ गये। कमलाका रस तैयार किया श्रीमती कमला नेहरूने। जेलखानोंके इन्स्पेक्टर-जनरलने, जो सरकारी पत्र लेकर आये थे, अनुरोध किया कि महात्माजीको रस पिलायें श्रीमती कस्तूर बाई खुद अपने हाथसे। महादेवने कहा, "जीवन जखन शुकाये जाय करुणाधाराय एसो" गीताञ्जलिका यह गीत महात्माजीको बहुत प्यारा है। सुर भूल गया था। सबके सुरमें सुर मिलाकर ही गाना पड़ा। पंडित श्याम शास्त्रीने वेद पाठ किया। उसके बाद महात्माजीने श्रीमती कस्तूर बाईके हाथसे धीरे-धीरे नीबूका रस पीया। अन्तमें साबरमती आश्रमवासियों और उपस्थित सबने मिलकर "वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीड़ पराई जाने रे" गाया। फल और मिठाई बाँटी गई, हम सबोंने प्रसाद समझकर उसे ग्रहण किया।

जेलकी चहारदीवारीके भीतर महोत्सव हो रहा है। ऐसी अनोखी बात और-कहीं भी नहीं हुई। प्राणोत्सर्गका यज्ञ हुआ जेलखानेमें, और उसकी सफलताने वहीं अपना रूप धारण किया। मिलनकी यह अकस्मात-आविर्भूत अपूर्व मूर्ति थी, इसे 'यज्ञसंभवा' कहा जा सकता है।

रातको पंडित हृदयनाथ कुंजरू प्रमुख पूनामें उपस्थित विशिष्ट नेताओंने घेर लिया मुझे, दूसरे दिन होनेवाली महात्मा गान्धीकी वार्षिक उत्सव-सभामें मुझे सभापति बनना पड़ेगा ; बम्बईसे मालवीयजी भी आ रहे हैं। मैंने प्रस्ताव किया, मालवीयजीके सभापतित्वमें मैं दो-चार बातें लिखकर कहूंगा। शारीरिक कमजोरीको अस्वीकार करके शुभ-दिनकी इस विराट् जनसभामें भाग लिये बगैर मुझसे न रहा गया।

तीसरे पहर 'शिवाजी-मन्दिर' नामक विशाल मुक्त प्रांगणमें विराट जनसभा हुई। बड़ी मुश्किलसे भीतर घुसा। सोचने लगा, अभिमन्युकी तरह प्रवेश तो हो गया, पर निकलनेका क्या उपाय है। मालवीयजीने अपनी उपक्रमणिकामें बड़ी खूबीके साथ हिन्दीमें समझाया कि अस्पृश्यता हिन्दू-शास्त्रके अनुकूल नहीं। बहुतसे संस्कृत श्लोकोंका हवाला देकर उन्होंने अपना वक्तव्य प्रमाणित किया। मेरा कंठ क्षीण था, उसमें इतनी दम कहाँ कि इतनी बड़ी सभामें अपना वक्तव्य सबके कानों तक पहुंचा सकूँ। मुंहजबानी दो-चार शब्द कहे, फिर अपनी रचना सुनानेका भार सौंप दिया श्री गोविन्द मालवीयपर। मुझे आश्चर्य हुआ जब वे मेरी बिन-सुनी रचना धाराप्रवाह स्पष्ट कंठसे पढ़ते चले गये।

इसके बाद, मोतीलाल नेहरूकी पत्नीने, अपने भाई-बहनोंको लक्ष्य करके, कहा कि सामाजिक साम्य-व्रतकी रक्षा करनेमें वे कुछ भी उठा न रखें। फिर सर्वश्री राजगोपालाचारी, राजेन्द्रप्रसाद आदि अन्यान्य नेताओंने मार्मिक शब्दोंमें सामाजिक अशुचि दूर करनेके लिए देशवासियोंका आवाहन किया। सभामें उपस्थित

विशाल जनसंघने हाथ उठाकर अस्पृश्यता निवारणके लिए प्रतिज्ञा ग्रहण की। समझ गया कि सबके मनमें महात्माकी आजकी वाणी पैठ गई है। कुछ दिन पहले तक ऐसे दुरूह संकल्पमें इतने हजार लोगोंका अनुमोदन पाना सम्भव नहीं था।

दूसरे दिन सवेरे बहुत देर तक मैं महात्माजीके पास रहा। उनके साथ और मालवीयजीके साथ बहुत देर तक अनेक विषयोंमें मेरी बातें हुईं। एक ही दिनमें महात्माजीको आशातीत बल मिल गया। उनका कण्ठस्वर दृढ़तर और खूनका दबाव लगभग स्वाभाविक हो गया। अतिथि-अभ्यागतोंका ताँता-सा बँध गया, सभी प्रणाम करके हँसते हुए अपना आनन्द प्रकट करने लगे। बच्चे भी आये और फूल चढ़ाकर अपने मनकी फूल जाहिर करने लगे। बच्चोंको पाकर महात्माजी इतने खुश थे कि कहते नहीं बनता। बन्धु-बान्धव और साथियोंके साथ सामाजिक साम्यके विषयमें तरह-तरहकी चरचा चलने लगी। अब उनकी चिन्ताका प्रधान विषय था हिन्दू-मुसलमानका विरोध-भंजन।

आज जो महात्माजीका जीवन हमारे आगे विराट भूमिकामें उज्ज्वल होकर दिखाई दिया है, उसमें सर्वमानवके भीतर महामानव का प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी प्रेरणा है। वह प्रेरणा सार्थक हो भारतमें सर्वत्र, सबकी यही एकमात्र कामना है। मुक्ति-साधनाका सच्चा मार्ग मनुष्यकी ऐक्य-साधनामें है। राष्ट्रीय पराधीनता हमारे हजारों सामाजिक भेद-विच्छेदोंके सहारे ही पनपती है। आज वह दिन आ गया जब कि जड़ प्रथाओंके समस्त बन्धनोंको तोड़कर उदार एकताके मार्गपर मानव-सभ्यता आगे बढ़ेगी।

पाठक-पाठिकाओंसे

अपने प्रिय पाठक और पाठिकाओंसे इतनी आशा मैं अवश्य करूंगा कि वे इस ग्रन्थमालाकी प्रत्येक रचनाके विषयमें अपनी राय मुझे अवश्य लिखें; ताकि मुझे मालूम होता रहे कि जिनके लिए यह प्रकाशन चालू किया गया है उन्हें इससे कितना रस मिल रहा है; और किन-किन बातोंमें सुधार करनेसे उन्हें उत्तरोत्तर अधिक आनन्द मिल सकता है।

दूसरी बात, इसके पहलेके मेरे अनुवाद जो चालू हैं वे बहुत पुराने होनेसे अब उनमें मेरा अनुमोदन नहीं है। इस ग्रन्थमालाके सभी अनुवाद नये हैं और आगे भी नये ही होंगे। असलमें, भाषाका उद्देश्य है दूसरोंको अपने मनकी बात समझाना। अपने-आपको समझाना अगर भाषाका उद्देश्य होता तो वह चाहे कितनी ही कठिन और टेढ़ी-तिरछी क्यों न हो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। कवि अपने भावोंका दान दे रहे हैं हमारे मनको। उस दानको जितने ज्यादा मन जितनी आसानीसे ग्रहण कर सकें उतना ही अच्छा है। इसी खयालसे भाषामें यथाशक्ति सरलता लानेकी कोशिश की गई है; और आगे भी करता रहूंगा।

मेरे मनमें इस प्रकाशनका नाम है 'देश-गठन-ग्रन्थमाला'; कारण, मैं समझता हूं, महाकवि रवीन्द्रकी रचनाएँ देशके मनको पनपानेमें जबरदस्त सहायक होंगी।

धन्यकुमार जैन

रवीन्द्र-साहित्य

[प्रत्येक भाग सजिल्द : कीमत २।) सवा दो रुपया]

पहले भागमें है एक उपन्यास और पाँच कहानियाँ—

'दो बहन' उपन्यास; और 'घाटकी बात', 'कंकाल', 'स्वर्णमृग', 'बदलीका दिन' और 'सौगात' ये पाँच कहानियाँ; और अन्तमें 'हिन्दू-मुसलमान' शीर्षक एक सुन्दर निबन्ध।

दूसरे भागमें हैं दस कहानियाँ —

'प्राण-मन', 'प्यासा पत्थर', 'दृष्टिदान' 'चन्द्रा फूः', 'जिन्दा और मुरदा', 'एक रात', 'एक बरसाती कहानी', 'मुक्तिका उपाय', 'दुलहिन' और 'चितवन'।

तीसरे भागमें हैं ग्यारह कहानियाँ —

'सड़ककी बात', 'दालिया', 'त्याग', 'निशीथमें', 'मणिहीन', 'सुभा', 'सम्पादक', 'छोटी-सी पुरानी कहानी', 'दुराशा', 'देन-लेन' और 'कहानी'।

चौथे भागमें है एक उपन्यास और तीन कहानियाँ —

'फुलवाड़ी' उपन्यास; और 'सम्पत्ति-समर्पण', 'बाकायदा उपन्यास' और 'दीवार' ये तीन कहानियाँ; और अन्तमें एक सुन्दर निबन्ध 'ढक्कन'।

पाँचवाँ भाग आपके हाथमें है
छठा और सातवाँ भाग छप रहा है

अनुवादक और प्रकाशक
धन्यकुमार जैन : 'हिन्दी-ग्रन्थागार'
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार, कलकत्ता-७

पाठक-पाठिकाओंसे निवेदन है कि

वे अपने यहाँकी पुस्तककी दूकानोंसे

रवीन्द्र - साहित्य

लेनेकी कृपा करें

और

पुस्तकालयोंको भी ऐसा ही करना चाहिए

क्योंकि

ऐसे लेनेमें डाकखर्चकी बचत होती है

❀

स्थानीय सोल-एजेण्ट

दि बुक एम्पोरिअम लिमिटेड

२२।१, कर्नवालिस स्ट्रीट : कलकत्ता ६

(सुकिया स्ट्रीटके पास)

❀

इन्दौर

नवयुग-साहित्य-सदन : खजूरी बाजार

❀

बम्बई

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय : हीराबाग, गिरगाँव